ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 12 जुलाई 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 12 जुलाई 2015 से 18 जुलाई 2015

द्वि.आ.कृ. 11 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 28, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. (थर्मल) पानीपत में 'शिक्षा के नैतिक मूल्यों का अवलंबन' पर हुई एक कार्यशाला

120 अध्यापकों ने जीवन को राष्ट्र और समाज की सेवा में समर्पित करने का लिया संकल्प!

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, थर्मल पावर, पानीपत में आयोजित 'शिक्षा में नैतिक–मूल्यों का अवलंबन' विषय पर आयोजित दो दिवसीय कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के अध्यक्ष डॉ. पूनम सूरी ने अध्यापकों का आह्वान किया कि वे अपने आचरण को उन्नत करते हुए विद्यार्थियों में नैतिक–मूल्यों का आधान करें। वैदिक सिद्धांतों का हवाला देते हुए श्री सूरी ने शिक्षा के उद्देश्यों और शिक्षा–प्राप्ति के साधनों पर व्यापक प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि विद्यालय में मिले संस्कार ही व्यक्ति के जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। विद्यालय माँ के बाद व्यक्ति के जीवन को बनाने वाली कार्यशाला है। लगभग एक घण्टे तक अपने मधुर और हृदयग्राही उद्बोधन से मुख्य–अतिथि ने बारह विद्यालयों से आए तीन सौ से अधिक शिक्षकों को भाव–विभोर कर दिया। डॉ. पूनम सूरी ने डी.ए.वी. विद्यालयों में कार्यरत् प्राचार्यों और शिक्षको के लिए इस प्रकार की कार्यशालाओं के आयोजन पर बल देते हुए यह घोषणा की कि एक सुनिश्चित प्रारूप के आधार पर देश–भर में फैले डी.ए.वी. विद्यालयों में इस प्रकार की कार्यशालाएँ करवाई जाएंगी। मान्य प्रधानजी के साथ उनकी सहधर्मिणी श्रीमती मणि सूरीजी इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित थीं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति के महामंत्री श्री आर. एस. शर्माजी ने की। उन्होंने पूनम सूरी जी के इस पवित्र संकल्प की प्रशंसा की और आशा प्रकट की कि इस आयोजन के पश्चात् डी.ए.वी. विद्यालयों में पढ़ रहे छात्रों के जीवन में महत्त्वपूर्ण बदलाव आएगा।

कार्यशाला के संयोजक डॉ. धर्मदेव विद्यार्थी ने इसका उद्देश्य स्पष्ट किया और कहा कि इस कार्यशाला के माध्यम से अध्यापकों और प्राचार्यों को जीवन की सच्चाई, कठिनाई और उसमें समाधान का ज्ञान कराना है। श्री सत्यपाल आर्य, सचिव–डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति एवं सहमंत्री आर्य प्रतिनिधि प्रादेशिक सभा ने भी अध्यापकों को संबोधित किया।

कार्यशाला में विशेषज्ञों के रूप में वेद, दर्शन, वैदिक आचार–संहिता और आयुर्वेद पद्धति के विशिष्ट विद्वानों को आमंत्रित किया गया था।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र से आए डॉ. देवव्रत आचार्य ने 'स्वास्थ्य ही जीवन है' विषय पर अपने अनुभव से भरे हुए प्रेरक व्याख्यान से आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए स्वस्थ जीवन जीने की कला पर बहुत ही प्रभावशाली प्रवचन तो दिया ही, साथ ही सभा में उपस्थित प्राचार्यों और अध्यापकों की अनेक शंकाओं का समाधान किया।

अजमेर से आए हुए वैदिक विद्वान् आचार्य सोमदेवजी ने ईश्वर के स्वरूप और उसकी सर्वव्यापकता को वैदिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध करते हुए उसके न्यायकारी, दयालु होने की चर्चा की। इस विषय पर सर्वाधिक प्रश्न और जिज्ञासाएँ उठीं जिनका समाधान योग्य प्रवक्ता ने बहुत ही सफलतापूर्वक किया।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति–प्राप्त विद्वान् डॉ. वागीश आचार्य ने जीव और जगत् की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए जीवन में आने वाली समस्याओं और उनके समाधान करने के तरीके बताए और शिक्षकों के जीवन में मानों एक नया अध्याय जोड़ दिया। यज्ञ के वैज्ञानिक स्वरूप को डॉ. वागीश ने इस प्रकार से स्पष्ट किया जिसे हर संप्रदाय से संबंध रखने वाले अध्यापकों ने एक स्वर से स्वीकार किया। किसी भी संगठनात्मक कार्य को यज्ञ बताते हुए उन्होंने अपने कार्य को यज्ञमय बना देने में ही व्यक्ति और समाज का कल्याण बताया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर डॉ. महेश विद्यालंकार जी ने 'शिक्षा में नैतिक–मूल्यों की आवश्यकता' पर बहुत ही मनोरंजक व्याख्यान देते हुए अध्यापकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि शिक्षा केवल अक्षर–ज्ञान नहीं, बल्कि मानव–निर्माण की एक कला है। कार्यशाला को सार्थक बनाने हेतु प्रत्येक सत्र के बाद शंका, समाधान का प्रावधान रखा गया था जिसका सभी उपस्थित अध्यापकों ने भरपूर लाभ उठाया और अपने हृदय कि उन–उन विषयों से संबंधित शंकाओं का समाधान प्राप्त किया।

आयोजन की समाप्ति पर कार्यशाला के विषय में अपने विचार रखते हुए लिखित प्रपत्रों के माध्यम से 120 अध्यापकों ने राष्ट्र और समाज की सेवा में समर्पित होने का संकल्प लिया और कहा कि शिक्षा के अतिरिक्त वे किसी भी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्य समाज से संबंधित कार्य को करने के लिए तैयार रहेंगे। इस कार्यशाला में हरियाणा के सभी क्षेत्रीय निदेशक, संबंधित बारह विद्यालयों के प्राचार्य उपस्थित रहे। दोनों दिन कार्यक्रम यज्ञ से आरम्भ होता रहा और दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार के आचार्य डॉ. प्रमोद योगार्थी के ब्रह्मत्व में अध्यापकों ने यज्ञ तो किया ही, साथ ही यज्ञ करने की विभिन्न क्रियाओं से संबंधित अर्थों को भी समझा। कार्यशाला अपने उद्देश्य को हासिल करने में हर प्रकार से सफल हुई।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **पूनम सूरी**

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 12 जुलाई, 2015 से 18 जुलाई, 2015

हमें क्षमा करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इमामग्ने शरर्णि मीमृषों नः, इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृ मर्त्यानाम्।।

ऋग् 1.31.13

ऋषिः **हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अग्ने**) हे अग्रणी तेजस्वी परमात्मन्! (**नः**) हमारी (**इमां**) इस् (**शरणि**) [व्रतलोप रूप] हिंसा को (**मीमृषः**) क्षमा करो। (**इमं**) इस (**अध्वानं**) [भ्रांत] मार्ग के अवलम्बन को भी [क्षमा करो] (**यं**) जिस पर [हम] (**दूरात्**) दूर तक (**अगाम**) चल चुके हैं। [तुम] (**सोम्यानां**) सौम्य जनों के (**आपिः**) बन्धु, (**पिता**) पिता [और] (**प्रमातिः**) शुभचिन्तक [हो], (**मर्त्यानां**) मर्त्यों को (**भूमिः**) घुमानेवाले [और] (**ऋषिकृत्**) ऋषि बना देनेवाले (**असि**) हो।

अपने जीवन में हम अन्य हिंसाएँ करते हों या न करते हों, पर व्रत–लोपरूप आत्महिंसा तो निरन्तर करते रहते हैं। कभी हम सत्य–भाषण का व्रत लेते हैं, कभी नित्य सन्ध्या–वन्दन और अग्निहोत्र करने का व्रत लेते हैं, कभी नियमित व्यायामा और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय का व्रत लेते है; पर शीघ्र ही इन ब्रतों को तोड़ भी देते हैं। हे परमात्मन्! तुम अग्नि हो, अग्रणी होकर सबका मार्ग–दर्शन करने वाले हो। हमारा भी मार्ग–दर्शन करो। तुम व्रत पति हो, हमें भी व्रतों पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करो। जो व्रत–भंगरूप हिंसा हम अब तक करते रहे हैं, उसके लिए हमें क्षमा करो।

व्रत–लोप के अतिरिक्त दूसरा अपराध हमने यह किया है कि हम अब तक भ्रांत राह पर चलते रहे, और उस भटकी राह पर चलते–चलते बहुत दूर निकल आये। अब यह देखकर हमारा सिर चकरा रहा है कि जितना ग़लत रास्ता हम पार कर चुके हैं, उससे वापिस लौटने के लिए हमें अनवरत कितना महान् प्रयास करना पड़ेगा। हे प्रकाशमय अग्निदेव! तुम्हीं प्रकाश देकर हमें उस कुमार्ग से वापिस लौटाओ। तुमसे दूर होकर जो हम भ्रांत पथ पर चल पड़े, उसके लिए भी तुम हमें क्षमा करो।

तुमसे क्षमा–याजना हम कारण नहीं कर रहे कि हम दंड से बचना चाहते हैं। हम जानते हैं कि दुष्कर्मों का दण्ड न देना रूप क्षमा तुम कभी नहीं करते हो। अतः तुम्हारे दण्ड का हम स्वागत करते हैं। व्रत–लोप और उन्मार्गगामिता का दुष्परिणाम हम पर्याप्त भोग चुके हैं और अब भी यदि कुछ भोग शेष है तो उसके लिए भी हम तैयार हैं। पर क्षमा–याजना हम भविष्य में उक्त अपराधों से बचने के लिए कर रहें हैं। क्षमा नही माँगता है जो अपने अपराध को स्वीकार करता है और उस अपराध से भविष्य में बचे रहने की जिसके मन में उत्कट चाह होती है। उसी मनोवृत्ति के के साथ हम तुम्हारे सम्मुख उपस्थिति होकर क्षमाप्रार्थी हो रहे हैं।

हे प्रभु! तुम सौम्यजनों के बन्धु, पिता और हितचिन्तक हो। तुम्हारी कृपा से हम भी सौम्य बन जाएँ। तुम 'भूमि' और 'ऋषिकृत्' हो। जैसे कुम्भकार मिट्टी को चाक पर घुमाकर उत्तमोत्तम पात्रों के रूप में परिणत कर देता है, वैसे ही तुम अपने दिव्य चक्र पर घुमाकर सामान्य मर्त्य को भी ऋषि बना देते हैं। हे देव! तुम हम पर भी अपनी कृपा बरसाओ, हम मर्त्यों को भी ऋषि बना दो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

महामन्त्र

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि ओम् के द्वारा परमधाम पहुंचना हो तो ऊंची ध्वनि से मिठास एवं मस्ती भरे स्वर से ओम् का उच्चारण करें। ओम् का मानसिक जप हृदय में ज्योति उत्पन्न करता है। ओम् के आगे '**भूः**', '**भुवः**', '**स्वः**' तीन व्याहृतियाँ गायत्री के साथ आई हैं। व्याहृति का अर्थ है विशेष रूप से आहृति।

इष्ट के वियोग और अनिष्ट की प्राप्ति को दुःख कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं 1. वे जिन्हें हम अपने भ्रम में घड़ लेते है 2. ऐसी इच्छायें जो पूर्ण न हो सकें 3. झूठे अभिमान 4. सृष्टि नियमों एवं, वेद आज्ञा के विरुद्ध चलना। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले के शरीर में पराक्रम, हृदय में उदारता, मेधा गम्भीर और मन हर्ष से भरा हो। इन गुणों के होने पर गृहस्थ को स्वर्गधाम कहा जाता है।

ब्रह्मचर्य सिद्धांत को भूलकर मानव ने स्वयं दुःख पैदा कर रखे हैं। एक दूसरे के लिए सुन्दर प्रिय वचन बोलते हुए प्रभु की ओर चलो। यदि मानव की हार्दिक इच्छा हो तो दुःखों से छुटकारा पा सकाता है। इनको दूर करने के लिए परमात्मा को पुकारने से पूर्व यत्न करना होगा।

अब आगे...

पूर्वोक्त चार प्रकार के दुःखों के अतिरिक्त एक श्रेणी ऐसे दुःखों की भी है जिसमें मानव अपने–आपको विवश पाता है–जैसे भूकम्प का होना, या वायु–जल का प्रतिकूल हो जाना, या राजनैतिक परिस्थितियों का अत्यन्त बिगड़ जाना, अतिवृष्टि, अनावृष्टि इत्यादि।

यह तो साधारण वृद्धि द्वारा देख लिया गया कि पाँच में से चार दुःख ऐसे हैं जो मानव के अपने बनाये हुए हैं। अब थोड़ा दार्शनिक बुद्धि द्वारा दुःख की विवेचना कीजिये, ताकि यह तत्त्व ज्ञात हो सके कि दुःख है क्या? हमारे जितने दर्शन–ग्रन्थ हैं, इनकी रचना हुई ही इसलिए थी कि हर प्रकार के दुःखों का अन्त करने का उपाय मिले। आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःखों से छूटने की तीव्र इच्छा ने इन दर्शन–ग्रन्थों के ऋषियों को बाधित किया कि वे तीनों प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति के साधन खोज निकालें, क्योंकि मानव–समाज दुःखों से पीड़ित दिखाई देता है। महर्षि दयानन्द भी तो मृत्यु के दुःख की जीतने ही के लिए घर से निकले और घोर तप तथा ज्ञान से वह साधन पा गए। बुद्ध भगवान् भी तो दुनिया के दुःखों को देखकर ही निर्वाण–प्राप्ति के लिए गया में जा बैठे। 'सांख्य–दर्शन' के ऋषि ने भी छठे अध्याय के सातवें मन्त्र में लिखा है– ''**कुत्रापि कोऽपि सुखीति?**''– क्या कहीं कोई भी सुखी है?

और 'धम्मपद गाथा' 146 में यह कहा है–

को नु हासो विमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।।

–जब यह दुनिया नित्य जलते हुए घर के समान है, तब यहाँ हँसी क्या हो सकती है और आनन्द क्या मनाया जा सकता है? परन्तु यह तो सर्वथा निराशावाद (Pessimism) है कि दुनिया नित्य जलते घर के समान है। इस 'जलते घर' में ही ऐसे स्थान और समय हैं, जहाँ सुख के स्रोत बहते हैं। दुःखों का निर्माण तो मानव आप कर लेता है। सुख भोगते हुए उसे सुख से भी ग्लानि होने लगती है, और मनःसन्तोष के लिए वह स्वयं दुःख का आवाहन कर लेता है। फिर भी दुःख है तो सही, चाहे मानव की सृष्टि है अथवा अपने–आप है। इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिए ही संसारी लोगों की भाग–दौड़ जारी है। नाना विचारधाराएँ जो चलती हैं उनका भाव भी होता तो यही है कि दुःख दूर किया जाये, चाहे अल्पज्ञता के कारण वे दुःख दूर होने के स्थान पर दुःखों में वृद्धि ही कर दें।

दुःखों के जो तीन विभाग किये गये हैं, वो भी इसलिए ताकि दुःखों को भली–भाति जानकर उनका अन्त किया जा सके। आध्यात्मिक दुःख–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि जन्य मानस–ताप और रोगजन्य शारीरिक ताप, कष्ट, पीड़ा। आधिभौतिक–सर्प, बिच्छू, सिंह, क्रूर स्वभाव के मनुष्य आदि भूतों से आए दुःख। आधिदैविक–बिजली, नाग, तीव्र वायु, अत्यन्त मन्द वायु, अनावृष्टि आदि दुःख तथा आपत्ति।

इन सब प्रकार के दुःखों को दूर करने का उपाय क्या है? कुछ निराशावादियों का तो यह कहना है कि दुनिया है ही दुःखमय। तुम दुःख दूर करोगे कैसे? परन्तु वेद ने तो संसार को दुःखमय नहीं बतलाया। हाँ, इसे प्रयोगशाला, तपोभूमि, श्रम–गृह तो अवश्य कहा है। साथ ही यह आज्ञा दी है कि यह सृष्टि मानव के भोग और अपवर्ग

के लिए बनाई गई है। अपना कर्त्तव्य पूरा करता हुआ **'मदस्व'** आनन्द लूट। नाचने (भगवान्–कीर्तन) तथा हँसने के लिए मानव यहाँ आया है, शोक–सागर में डूबे रहने के लिए नहीं।

तब इन दुःखों से बचें कैसे? इसका दार्शनिक उत्तर तो यह है कि दुःख को दुःखों ही न समझा जाये। दुःखों में दुःख मानना ही दुःख है। दुःखों को तप समझकर प्रसन्नतापूर्वक धैर्य, साहस तथा वीरता से सहन करना मानवता का परिचय देना है। मानव दुनिया को सुख–भोग का साधन ही क्यों समझे? यह कोई न समझे की दुनिया में मानव श्रम करने, तप करने और दुःखों की अत्यन्त–निवृत्ति के लिए आया है? इस स्थान पर तो बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ करते हुए दुःखों से पृथक् होने का यत्न करना है और जब ज्ञान द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि द्रष्टा और दृश्य का संयोग ही दुःख का हेतु है, तब यत्न यही होगा कि इस दृश्यमान विकृत हुई प्रकृति से अपना सम्पर्क तोड़कर सुखसागर परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लिया जाये। यह मानव के अपने अधिकार में है कि वह दुःख के मूल कारण–प्रकृति–संयोग को अपना ले या सुख के मूल परमात्म–तत्त्व से सम्पर्क उत्पन्न कर ले। भुवः परमात्मा के साथ अपना संबंध जितना गहरा किया जायेगा सुख की मात्रा उतनी ही बढ़ती जाएगी; परन्तु यह सर्वदा ध्यान रखना कि जब साधक चाहता है कि भगवान उसके दुःखों को दूर करे तो साधक को भी तो अपनी सामर्थ्यानुसार दुःखियों के दुःख दूर करने का यत्न करे ! यह प्रार्थना तभी सफल सार्थक तथा सफल होगी।

स्वः– तीसरी व्याहृति स्वः है। स्वः शब्द के अर्थ महर्षि दयानन्द ने 'पच्च्महायज्ञविधि' में ये लिखे हैं–

''यदभिव्याप्य ध्यानयति चेष्टमति प्राणादिसकलं जगत् स ध्यानः सर्वाधिष्ठाने बृहद् ब्रह्मेति। खल्वयं स्वः शब्दार्थोस्तीति मन्तव्यम्।।''

–वह सब जगत् में व्यापक होकर सबको नियम में रखता है, और सबका ठहरने का स्थान और सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

तैत्तिरीय आ. शिक्षाध्याय अनु. 5.3 में बतलाया है–

सुवरिति व्यानः –व्यानयति चेष्टयति प्राणादिसकलं जगदभिव्याप्य स व्यानः सर्वाधिष्ठाने बृहद् ब्रह्म।''

–स्वः वह व्यान वायु है, जो जगत् में व्यापक होकर प्राणादि सर्व की चेष्टा करता है। वह व्यान वायु सबका अधिष्ठान व्यापक ब्रह्म है।

संक्षेप में स्वः का अर्थ हुआ– सुखदाता, आनन्ददाता, व्यान, आनन्द ब्रह्म।

मानव केवल इसी से सन्तुष्ट नहीं हो जाता कि उसके दुःख दूर हो गए, अपितु वह यह भी चाहता है कि उसे सुख मिले, और सुख चाहता कौन नहीं? दुनिया के लोगों की सारी भाग–दौड़ है ही सुख–आनन्द के लिए। परन्तु सुख तथा आनन्द में एक बड़ा अंतर है। सुख तो क्षणिक है और आनन्द वह सुख है जो निरन्तर बना रहे। मानव आनन्द ही में सन्तोष पाता है, और ऐसा सुख परमात्मा ही के पास है। परमात्मा सत्–चित् आनन्द है। जीवात्मा सत्–चित् है । आनन्द ही की इसमें कमी है। उसी कमी को पूरा करने के लिए साधक भगवान को 'स्व' शब्द से पुकारा रह है कि हे सुखदाता! आनन्द के भण्डार! मुझे भी अपने आनन्द का अमृत पिला दे। उस आनन्द के निकट पँहुचे बिना न दुःख का नाश होता है, और न सुख की प्राप्ति होती है।

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' के ऋषि का अनुभव सुनिये–

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति
।। 6.20 ।।

जब लोग चर्म की तरह आकाश को लपेट सकेंगे, तब परमात्मा को जाने बिना दुःख का अन्त होगा, अर्थात् जैसे आकाश को लपेटना असम्भव है इसी प्रकार परमात्मा की शरण लिये बिना दुःख का अन्त होना असम्भव है; और जब तक दुःख दूर न हो, सुख कैसे प्राप्त हो?

'तैत्तिरीयोपनिषद्' में स्वः का भावार्थ लिखा है। महर्षि दयानन्द ने भी स्वः की व्याख्या की है और इसके यौगिक अर्थ होते हैं– 'चेष्टा करनेवाला, बाहर फेंकनेवाला'। (दुःख के कारणों को बाहर फेंकनेवाला।) कौन–सी चेष्टा परमात्मा कराना चाहता है? यही कि सब आनन्द को प्राप्त हों। इसलिए यह सृष्टि रची गई, ताकि जीव को अवसर मिले कि वह कर्मों के भोग भोगता हुआ परमानन्द को पा ले। यह दुनिया न तो दुःख का सागर है, न ही सुख सागर है। यह तो परमात्मा की अपार कृपा का एक स्पष्ट उदाहरण है। परमात्मा अपनी दयालुता से जीव को ऐसे अवसर सर्वदा देता रहता है ताकि वह आनन्द–प्राप्ति के लिए यत्न कर सके। उसी चेष्टानुसार साधक स्थायी सुख के लिए स्वः–सुखस्वरूप परमात्मा को पुकारता है। परन्तु साधक पहले यह तो देख ले कि क्या मैं स्वयं भी किसी दुःखी को सुखी बनाने का साधक बन रहा हूँ या नहीं?

'ओम् भूर्भुवः स्वः' का अर्थ संक्षेप में यह हुआ–

–हे रक्षक, प्राणाधार, दुःखनाशक, सुखदाता, सत्–चित्–आनन्द भगवान्!

इन व्याहतियों के पश्चात् गायत्री–मन्त्र का आरम्भ होता है। गायत्री–मन्त्र के पहले तथा दूसरे पाद के चार शब्द बड़े महत्व के हैं–

(1.) सवितुः, (2.) वरेण्यम्, (3.) भर्गः, और (4.) देवस्य!

सवितुः–

सविता शब्द बड़ा भारी महत्वपूर्ण शब्द है। चारों वेदों में सहस्त्रों बार भिन्न–भिन्न रूप में आया है। 'निरुक्त' में सविता के सम्बन्ध में यह कहा है–

''सविता वै सर्वस्य 'प्रसविताः अग्निः
'सवितारंमाह सर्वस्यं प्रसावितारम्।''
[निरुक्ते दैवतकाण्डे, अ. 7 पा. ख. 9।।]

निश्चय करके सविता ही सब सृष्टि की उत्पत्ति करनेवाला है। अग्नि को सविता कहते हैं। अग्नि ही सबको उत्पन्न करनेवाली है।

गोपथ ब्राह्मण पू. भा. प्र. 1. ब्रा. 33. में कहा है–

''चन्द्रमाः सविता प्राण एव सयिता विद्युद्देव सविता।''

चन्द्रमा सविता है, प्राण भी, सविता है, विद्युत् भी सविता है।

'मैत्र्युपनिषद्' 6.7 में कहा है–**''एष हि खल्वात्मा सविता''**– निश्चित रूप से सही सविता सब प्राणियों की आत्मा है। इसी उपनिषद् (6.65) में **'सर्जनात् सविता'**– उत्पादक होने से सविता नाम लिखा हुआ है। केवल पालन करने ही से नहीं, उत्पत्ति तथा प्रेरणा करने से भी ईश को सविता कहते हैं।' [याज्ञ.अ.9.55. 56. 2. शतपथ ब्राह्मण। 3. श्वेताश्वतर उप.]

असौ वै देवः सवितेति [2. शतपथ ब्राह्मण।]–निश्चय करके यह देव (परमात्मा) सविता है।

तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम् [3. श्वेताश्वतर उप.]–यह श्रेष्ठ सविता है, यह अविनाशी है।

संक्षेप में सविता के अर्थ हुए– जन्म देनेवाला, प्रेरणा करनेवाला, सब भूतों की रक्षा करनेवाला आत्मा। सविता परमात्मा की उस शक्ति का नाम है, जिसने सोई हुई प्रकृति को प्रेरणा की और प्रकृति ने नाना रूप मानव के कल्याण के लिए धारण कर लिये। सूर्य को भी सविता इसलिए कह दिया जाता है कि यह सोए हुए सांसारिक जीवों को जागरित अवस्था में लाकर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा करता है। सविता सकल लोकों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार का कारण है और बीज–रूप में पड़े हुए अनेक कारणों को अपने प्रकाश तथा गर्मी से वृक्ष–रूप देता है। महर्षि दयानन्द ने सविता की व्याख्या इस प्रकार की है–

(सवितुः) सुनोति सूयते सुवति योत्पादयति सृजति सकलं जगत् सा सर्व–पिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा तस्य, सवितुः प्रसवे। [पंचमहायज्ञविधिः]

–जो समस्त जगत् को उत्पन्न करता और सबका स्वामी है, वह सर्वपिता जगदीश्वर सविता परमात्मा है।

निस्सन्देह सविता सम्पूर्ण पदार्थों पर शासन करता है और जितने भी पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इन सबका वही ईश्वर है। वही शुभ प्रेरणा करनेवाला है, वही सविता देव सब बुराइयों को हमसे दूर करके कल्याणकारी पदार्थ हमें देता है।

परमात्मा की महती शक्ति, सविता को पुकारते हुए साधक सविता शक्ति को अपने अन्दर भी धारण करता है, ताकि वह परमात्मा के इस गुण को किसी अंश में अपने में लाकर इससे कार्य भी ले सके। उपासक–साधक के लिए आवश्यक है कि वह अपने प्रियतम के कुछ गुणों को तो अपने आत्मा में ले आए।

परमात्मा की प्रेरणा करनेवाली सविता–शक्ति ने केवल आदिसृष्टि ही में कार्य नहीं किया, यह शक्ति अब भी निरन्तर कार्य करने में लगी है, और मानव–हदय में विराजमान सविता–शक्ति अच्छे कार्यो के लिए उत्साह, प्रसन्नता तथा आनन्द बढ़ाती है और बुरे कार्य करने वालों में शंका, लज्जा, शोक उत्पन्न करती है। ['सत्यार्थप्रकाश', सप्तम तथा नवम् उल्लास]

शेष अगले अंक में....

राष्ट्रीय व्यक्तित्व विकास एवं आत्मरक्षण शिविर का आयोजन

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल की संचालिका श्रीमती मृदुला चौहान से प्राप्त पत्र के अनुसार सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल के तत्वावधान में राष्ट्रीय व्यक्तित्व एवं आत्मरक्षण शिविर का आयोजन 18 जून से 28 जून 2015 तक एस.एम. आर्य पब्लिक स्कूल, पंजाबी बाग, वैस्ट नई दिल्ली में योग्य प्रशिक्षिकाओं के निर्देशन में किया जा रहा है। इच्छुक शिविरार्थी 18 जून को दोपहर 1 बजे तक अवश्य पहुंचें। आयु कम से कम 14 वर्ष हो। टार्च लाठी, मग, साबुन साथ लाऐं। शिविर का गणवेश 2 जोडी सफेद सलवार कमीज, केसरिया दुपट्टा, सफेद पीटी शूज, सफेद मोजे व पहपपे के उचित कपड़े साथ लाएं। शिविर शुल्क 500/– रू. पति शिविरार्थी होगा। पाठ्यपुस्तकें शिविर की तरफ से दी जायेंगी।

शास्त्रानुसार स्वर्ग

● महात्मा चैतन्यमुनि

विभिन्न मतवादियों ने स्वर्ग के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अनर्गल एवं अविश्वसनीय कल्पनाएं कर रखी हैं मगर व्याकरण शास्त्रानुसार 'स्वर्ग' शब्द 'स्वर्' उपपद में 'गम्लृ–गतौ' धातु से **'ड प्रकरणेऽन्येष्वपि दृश्यते।** अ03–248 वार्तिकसूत्र से 'ड' प्रत्यय के योग से बनता है। गति के ज्ञान–गमन–प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। 'स्व' सुख का अनुभव होना, सुख में प्रविष्ट होना, सुख की प्राप्ति होना ही स्वर्ग अर्थात् सुख है। इसी प्रकार 'स्वर्गलोक' का अर्थ है। 'लोकृ दर्शने' धातु से लोक शब्द बनता है जिसका अर्थ 'स्थान' है। जहां स्वर्ग प्राप्त होता है– सुख प्राप्त होता है वह स्वर्गलोक है। स्थान से यहां किसी विशेष स्थान से नहीं है बल्कि जिस अवस्था में हमें सुख प्राप्त हो वही स्वर्ग है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के 'स्वमन्तव्यामन्तव्य–प्रकाश' में लिखते हैं– 'स्वर्ग'–नाम सुख–विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। 'नरक'– जो दुःख–विशेष भोग और सामग्री को प्राप्त होना है। सत्यार्थप्रकाश के नौवें समुल्लास में वे मुक्ति के प्रसंग में स्वर्ग–नरक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं– 'मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान अर्थात् यथावत् होता है। यही सुखविशेष 'स्वर्ग' और विषयतृष्णा में फंसकर दुःखविशेष भोग करना 'नरक' कहाता है। 'स्वः' सुख का नाम है; **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः, अतो विपरीती दुःखभोगो(यस्मिन् स) नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह 'सामान्य स्वर्ग', और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वही 'विशेष स्वर्ग' कहाता है। 'यहां पर महर्षि जी ने स्वर्ग को भी दो भागों में बांटकर बहुत ही सुन्दर एवं सार्थक विचार प्रस्तुत करके संसार को उपकृत किया है।

लोक शब्द का अर्थ है 'जो देखा जाए, जो जाना जाए। इसके भाव हम इस प्रकार से समझ सकते हैं– स्थान, अवस्था या काल, सुख–विशेष की अवस्था, प्रकाश की अवस्था आदि। लोक शब्द का व्यवहार बहुत से प्रसंगों में किया जाता है, जैसे – कन्या पितृलाक को छोड़कर पतिलोक को जा रही है आदि। जैसे स्वर्ग–लोक कोई स्थान विशेष नहीं है उसी प्रकार नरक भी कोई स्थान विशेष नहीं है। स्वर्ग का अर्थ सुख है इसलिए नरक का अर्थ दुःख हुआ क्योंकि नरक शब्द स्वर्ग का विपरार्थक है। रामायण के सुप्रसिद्ध टीकाकार गोबिन्दराज ने नरक अर्थ इस प्रकार किया है – **अत्र नरकः शब्देन दुःखं लक्ष्यते**– यहां नरक शब्द का अर्थ दुःख है। महर्षि यास्कजी ने निरुक्त में लिखा है – **नरकंन्यरकं नीचैर्गमनम् इति वा।** (1–3–11) अर्थात् दुःख, अधः पतन या अवनति का नाम नरक है। नरक का सीधा सा अर्थ है – नीचे जाना, पतन का लोक, निरुक्त में भी कहा है – नीचे जाना, सुख का अभाव।

स्वर्ग तथा मुक्ति के लिए वेदों में अन्य शब्द भी आए हैं– **'सुकृतस्य लोके'** (ऋ.10–85–24) अर्थात् पुण्य कर्मों के लोक में। **'अमृतस्य लोके'** (ऋ.10–85–20) अर्थात् अमर लोक में प्रविष्ट हों। निरुक्त (2–14) में भी स्वर्ग के पर्यायवाची नाम, द्यौ तथा सुकृतस्य–लोक दिए हैं। मीमांसा (6–1–1) में 'स्वर्ग' सुख विशेष को माना गया है। स्वर्ग शब्द से स्थान–विशेष व वस्तु विशेष का ग्रहण मीमांसा को स्वीकार्य नहीं है। वेद के अनेक मन्त्रों में द्यौलोक, ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक, मोक्ष तथा सुकृतलोक आदि की चर्चा की गई है। **...बृहस्पतेरुत्तमं नाकं ँ रुहेयम्, इन्द्रस्योत्तमं नाकं ँ रुहेयम्...** (यजु09–10) बृहस्पति और इन्द्र अर्थात् जो ज्ञानवान् व जितेन्द्रिय को विशेष स्वर्ग मिलता है, वह मुझे प्राप्त हो। महर्षि दयानन्दजी ने **नाकः** (यजु015–49) को मोक्ष–सुख लिखा है। **असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।** (यजु035–22) यहां पर महर्षिजी ने स्वर्ग का अर्थ भी मोक्ष–सुख किया है। **स्वर्गलोके:** (यजु023–20) सुखमय लोक। **सुकृतस्य लोके** (यजु015–50) पुण्य कर्मों से अर्जित लोक। **येन स्वः स्तभितं येन नाकः** (यजु032–6) यहां पर स्वः का अर्थ सुख तथा नाकः का अर्थ सब दुःखों से रहित मोक्ष किया है। महर्षिजी ने बहुत से स्थानों पर **अमृतम्** का अर्थ भी (यजु032–10, 25–13) मोक्ष–सुख किया है। अमरकोश के अनुसार– **स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदशालयाः। सुरलोको द्यौर्दिवो द्वेस्त्रियां त्रिविष्टपम्।।** (16) अर्थात् स्वः, अव्यय, स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक, द्यौ, दिवः और त्रिविष्टप आदि शब्द एक ही पदार्थ के वाचक हैं। स्वर्ग किसे प्राप्त होता है इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में आया है– **अविन्दद् दिवो....इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः।।** (ऋ01–130–3) ज्ञानी पुरुष शरीरस्थ प्रभु का दर्शन करता है, जितेन्द्रिय बनकर वह प्रभु–प्रेरणा को सुनता है और स्वर्गद्वारों को खालने वाला होता है। **एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यांस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्टयै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा।।** (22–34) एक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना और पुरुषार्थ करो। शतवर्ष की आयु प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करो। एक सौ एक प्रणव–जप और गायत्री–जप के लिए तत्पर हो। अन्धकार दूर करके प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयास करो। स्वर्गप्राप्ति के लिए प्रयास करो।

ब्राह्मण ग्रन्थों (ता08–2–5) में कहा गया है– **आथर्वणं लोककामाय ब्रह्मसाम कुर्यात्। (आथर्वणम्)** स्थायी स्वर्ग–मोक्ष की प्राप्ति के लिए **ब्रह्मसाम**– अर्थात् वेदानुसार यम–नियमादि का पालन करके स्वर्ग लोक को प्राप्त करे। एतरेय ब्राह्मण (7–10) में कहा गया है कि श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्ग–लोक को जीता जाता है। कठोपनिषद् में नचिकेता अपने दूसरे वर में स्वर्ग के सम्बन्ध में यमाचार्य से कहता है–

स्वर्ग लोके न भयं किंचनास्ति तत्र न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।
स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।। (1–12, 13)

स्वर्गलोक में किसी प्रकार का भय नहीं है, न वहां तू है, न जरावस्था–इन दो ही से तो मनुष्य डरता है, वहां मृत्यु से भी भय नहीं, वृद्धावस्था से भी भय नहीं। स्वर्गलोक में भूख–प्यास इन दोनों प्रवाहों को तर लेते हैं, द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाते हैं, शोक पीछे रह जाता है, आनन्द ही आनन्द रह जाता है। हे यमाचार्य! आप उस स्वर्ग प्राप्त कराने वाली 'अग्नि' को जानते हैं। हे मृत्यो! मैं श्रद्धापूर्वक पूछता हूँ, आप मुझे उसका उपदेश दें। जो स्वर्गलोक में जाते हैं उन्हें अमृतत्व–अमरता–प्राप्त होती है इसलिए 'स्वर्ग–साधक अग्नि' का आप उपदेश दीजिए। द्वितीय वर से मैं यही मांगता हूँ।

मनु महाराज ने स्वर्ग शब्द का प्रयोग इहलौकिक सुखों के साथ ही मोक्ष सुख भी किया है। उसी को उन्होंने अक्षयसुख भी कहा है। गृहस्थ प्रकरण में वे कहते हैं–

स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।।
(मनु03–79)

स्त्री–पुरुषों। जो तुम अक्षय मुक्ति–सुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य नहीं है, उस गृहस्थाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो। सुख–प्राप्ति में स्त्री की महत्ता इस प्रकार बताई है–

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रुषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च।।
(मनु09–28)

सन्तानोत्पति धर्म–कार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पित्तरों का जितना सुख है वह सब स्त्री ही के आधीन होता है। भोजन के सम्बन्ध में निर्देश देते हुए मनुजी कहते हैं–

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।
(मनु02–32)

अधिक भोजन करना स्वास्थ्यनाशक, आयुनाशक, सुख–नाशक, अहितकर और लोगों द्वारा निन्दित माना गया है इसलिए उस अधिक भोजन करने को छोड़ देवें। अतिथि सेवा से मिलने वाले सुख के सम्बन्ध में कहते हैं–

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम्।।
(मनु03–106)

जिस पदार्थ को अतिथि को नहीं खिलावे उसे गृहस्थी स्वयं भी न खावे, अभिप्राय यह है कि जैसा स्वयं भोजन करे वैसा ही अतिथि को भी दे। अतिथि सत्कार करना सौभाग्य, यश, आयु और सुख को देने और बढ़ाने वाला है। श्रेष्ठ आजीविका के व्रत से मिलने वाले सुख के बारे में कहा है–

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत्।।
(मनु04–13)

स्नातक गृहस्थी द्विज निर्धारित वृत्तियों में से अपेक्षाकृत किसी श्रेष्ठ आजीविका से जीवननिर्वाह करते हुए सुख, आयु और यश देने वाले व्रतों को धारण करे। श्रेष्ठ स्वभाव बनाने से भी सुख प्राप्त होता है–

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्त्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः।।

सदा दृढ़कारी कोमल स्वभाव जितेन्द्रिय हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहने हारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे।

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम्।।
(मनु. 6–84)

यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौण संन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का यही सुख की खोज करनेहारे, और यही अनन्त सुख की इच्छा करने हारे मनुष्यों का आश्रय है।

योगदर्शन के सूत्र–**संतोषादनुत्तमः सुखलाभः।।** (2–42) का भाष्य करते हुए महर्षि व्यासजी कहते हैं– 'सन्तोष' नामक नियम की सिद्धि के विषय में और भी कहा है– संसार में जो भी कामना की पूर्ति का सुख है और जो भी स्वर्गीय महान् सुख है ये दोनों सुख तृष्णा के नाश से प्राप्त होने वाले सुख की सोलहवीं कला (अंश) के भी समान नहीं हो सकते। बाल्मीकि रामायण (अ0का0109–31) में कहा गया है कि सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियों पर दया, प्रिय वचन बोलना, अतिथियों व विद्वानों की सेवा करना–ये स्वर्ग–प्राप्ति के साधन हैं। आचार्य चाणक्य के अनुसार–

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी।
विभवे यस्य सन्तोषस्तस्य स्वर्गमिहैव।। (2–3)

जिसका पुत्र वश में हो, भार्या आज्ञा का पालन करती हो तथा ऐश्वर्य में जिसे सन्तोष हो, उसका स्वर्ग यहां ही है। पारलौकिक सुख मोक्ष के सम्बन्ध में किसी ने बहुत ही उत्तम कहा है–

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत् सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते।।

समाधि के द्वारा जिसने अपने अविद्यादि मलों को नष्ट कर दिया है और जिसने अपने चित्त को आत्मा में स्थिर कर लिया है ऐसे व्यक्ति को जो सुख होता है उसका वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका तो स्वयं ही अन्तःकरण द्वारा अनुभव होता है।

महादेव, सुन्दरनगर – 174401, हि. प्र.

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

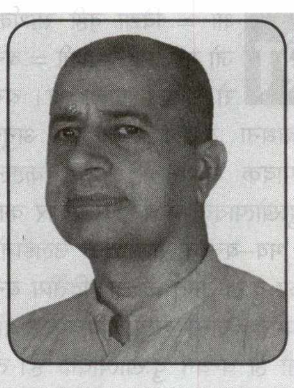

शंका– राजनीतिज्ञों की अहिंसा किस कोटि में रखनी चाहिए?

समाधान– आपके घर का व्यक्तिगत सवाल हो तो ठीक है। जैसे कि एक व्यक्ति ने आपको झापड़ मार दिया, आपके साथ धोखा कर दिया, उसे आप सहन कर सकते हैं। पर समाज के लिये, देश के लिये आप इस तरह से काम नहीं कर सकते हैं। देश किसी एक व्यक्ति की जागीर नहीं है। पहले इस बात को अच्छी तरह समझना।

राजनीतिक के नियम अलग हैं, और आध्यात्मिक–क्षेत्र के नियम अलग हैं। **अन्याय को सहन करना ब्राह्मण के लिए गुण है। लेकिन अन्याय को सहन करना क्षत्रिय के लिए दोष है। इसलिए दोनों के नियम अलग–अलग हैं। अन्याय को अगर क्षत्रिय (सेना) सहना शुरू कर दें तो अहिंसा की रक्षा नहीं हो सकेगी।**

अगर विदेशी शत्रु हमारे देश में घुस जायें और वो कहें कि हम तो तुम्हारे देश में शासन करेंगे। और हम कहें– 'हाँ–हाँ ठीक है, तुम कर लो मगर हम तुमसे लड़ेंगे नहीं, हम तुमको कुछ नहीं कहेंगे, तुम हमारे देश में शासन कर लो, हम तुम्हारे गुलाम बनके रहेंगे, तुम हमारी शिक्षा, धर्म, माँ और बहनों को भ्रष्ट करोगे तो भी हम तुमसे लड़ेंगे नहीं क्योंकि हम तो अहिंसावादी हैं, हमें तो अहिंसा का पालन करना है।'

'राजनीति' एक अलग चीज़ है, 'आध्यात्म' एक अलग चीज़ है। अंहिसा, सत्य, आदि के जो उपदेश चल रहे हैं, यह आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें हैं। गाँधी जी की जो अहिंसा है, इस तरह की अहिंसा राजनीतिक क्षेत्र में नहीं चलती है। यह जो अहिंसा की बात है, **आध्यात्मिक क्षेत्र की बात है, राजनैतिक क्षेत्र इससे अलग है। उसमें तो राजनीति के नियमों से ही चलना पड़ता है।** राजनीतिक में तो न्याय चलता है। वहाँ पर दण्ड चलता है। राजनीतिक में ऐसा थोड़े चलता है। यह तो हमारा देश है, हम इसके मालिक हैं। तुम यहाँ से बाहर निकलो। कोई किसी को हाथ जोड़कर यह कहे कि– अच्छा जी, तुम चले जाओ। क्या ऐसे कोई चला जाता है? केवल हाथ जोड़ने से अंग्रेज़ नहीं चले गए। यह ध्यान रखने वाली बात है कि जब क्रांतिकारियों ने अपने दल बनाये और धड़ाधड़ काकोरी जैसे कांड किये और जबरदस्त सेनाएँ बनाईं, आजाद हिन्द सेना बनायी और **अंग्रेज़ों को यहां रहना फायदेमंद नहीं लगा, तब जाकर अंग्रेज़ों का दिमाग ठिकाने आया।** देश आज़ाद ऐसे ही नहीं हुआ। बहुत से देशभक्तों ने अपना जीवन बलिदान किया। तब जाकर के हमारा देश स्वतंत्र हुआ। सत्य, अहिंसा की जो आध्यात्मिक चर्चा है, यह आध्यात्मिक क्षेत्र में ठीक है। राजनीति के क्षेत्र में ऐसा इस रूप में नहीं चलता। वहाँ तो न्याय चलता।

जब भारत–पाकिस्तान का विभाजन हो गया, और यह निर्णय हो गया, कि हिन्दु लोग इधर आ जायेंगे और मुस्लिम–लोग उधर चले जायेंगे। तो भी गांधी जी ने कहा दिया, कि चलो **'कोई बात नहीं'**, इनको इधर ही रहने दो। यह **'कोई बात नहीं'** राजनीति में नहीं चलता। वहां तो, न्याय चलता है। चलो, **'कोई बात नहीं'**, यह नियम आध्यात्मिक क्षेत्र में चलता है। **राजनीति में इस नियम को लागू करने का परिणाम अच्छा नहीं होता।** गाँधीजी की जो अच्छी बात है; वो अच्छी बात सीख लो तो कोई बात नहीं होता। पर जो दोष हैं, उनको छोड़ देना चाहिये। उनको नहीं अपनाना चाहिये।

शंका– हम लोग बेल्ट, जूता, चप्पल आदि चमड़े से बनी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, तो क्या ये अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा है?

समाधान– यदि जूता, चप्पल, बेल्ट इत्यादि चीजें प्राणियों को मार–मार कर बनाई जाती हैं, तो वह परोक्ष रूप में हिंसा है। यदि गांव में हम देखते है, कि कोई व्यक्ति चमड़े का काम करता है या स्वाभाविक मृत्यु से कोई पशु मर गया, वह उसका चमड़ा उतार अगर लाए, उससे जूते बना दिये, और उसका उपयोग करते हैं, तो कोई हिंसा नहीं। वेद में लिखा है– प्राणियों की हिंसा न करो, **स्वाभाविक रूप से जो गाय–भैंस मर जाते हैं, उसका चमड़ा उतारकर जूते बना लो, बेल्ट बना लो, और चीजें बना लो, तो उसमें हिंसा नहीं है। हाँ, यदि चमड़े के लिए ही प्राणियों को मारा जाता है, तो वो हिंसा है।** हमें इन सबसे बचना चाहिए। गाय दूध देना बंद कर दे, तो उसको मारकर खाना या उसको मारकर चमड़ा बनाना यह हिंसा होगी।

मान लीजिए, हमारे दादा जी बूढ़े हो गए, अगर वे काम नहीं कर सकते, कुछ पैसे नहीं कमाते। तो क्या दादाजी को मार देना चाहिए? यह कोई बात है भला? दादाजी हैं, या जो भी बड़े हैं'', उनकी सेवा करो। गाय–भैंस ने पंद्रह साल हमारी सेवा की तो अब बुढ़ापे में हमको उसकी सेवा करनी चाहिए। चारा खिलाओ, उसकी रक्षा करो। उसको मारना नहीं है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

प्रपीड़क पंचक

1. कर रही तरंगें – तंग–तंग

● देवनारायण भारद्वाज

पुरातन काल में कोई लोकप्रिय और चरित्रवान शासक थे। उनके सभी कर्मचारी व अधिकारी भी वैसे ही ईमानदार थे। वहाँ कोई घूस की धौंस नहीं चलती थी। समय–समय पर बिगड़े काम बनाने वाला, वहाँ एक योग्य कर्मचारी था। जब शासक के पास उसके सम्बन्ध में घूस लेने की शिकायतें आने लगीं, तब उन्होंने सोचा कि इस कर्मचारी को सेवा मुक्त भी न करना पड़े, और उसे ऐसे काम पर लगा दिया जाये, जहाँ घूस लेने का कोई अवसर भी इसको न मिले। उन्होंने इसको समुद्र के किनारे समय काटने के लिए बैठा दिया। उसने कहा– मैं खाली बैठे–बैठे यहाँ क्या झक मारूँगा? कुछ काम भी बताइए। शासक ने टालने के लिए कह दिया– अच्छा, तो तुम समुद्र की लहरें गिनते रहना। यह तो उसके लिए शासक का आदेश हो गया। जब कोई जहाज वहाँ से गुजरने लगे, कर्मचारी उसको रोक दे; क्योंकि उसके लहरों के गिनने में बाधा पड़ रही थी, अन्तत्वोगत्वा जहाज को आने–जाने के लिए उसके मालिक को घूस का ही सहारा लेना पड़ता था। अब तो घूस का नाम ही लोगों ने बदल दिया है– सुविधा शुल्क।

समुद्र लहरों को यहीं छोड़कर अब आकाश की तरंगों की चर्चा करते हैं। यही वह तरंगें हैं, जिनके माध्यम से कम्प्यूटर, टेलीविजन एवं मोबाइल आदि यन्त्रों के संजाल सक्रिय होते हैं। अब स्थिति यहाँ तक गम्भीर हो गई है कि इन तरंगों से अश्लील, अपराधपूर्ण, अनैतिक, अत्याचारी व अनहोनी घृणास्पद वार्तायें व दृश्यावलियाँ प्रसारित हो रही हैं, जिनके कारण उत्पन्न मानसिक प्रदूषण व्यावहारिक जीवन का सत्यानाश करता चला जा रहा है। बाल अपराध, वृद्ध अपराध, नारी अपराध, यौन अपराध, परिवार अपराध आदि अपराध बढ़ते जा रहे हैं। पुरातन काल में समुद्र की लहरों को गिनने के बहाने से जहाजों को रोकने का प्रसंग कैसा भी हो, किन्तु आज इन तरंगों के माध्यम से चलने वाले उक्त विनाशकारी यन्त्रों के संचालन को नियन्त्रित करने की नितान्त आवश्यकता है जो चरित्रभ्रंश–विध्वंस के साधन बने हुए हैं और राष्ट्र में हा–हा कार मचा रहा हैं।

2. भाग भेड़, भेड़िया आया

आपने एक लघु कथा सुनी होगी? नदी के किनारे एक बकरी या भेड़ का मेमना पानी पी रहा था। नदी के ऊपरी भाग– जिस ओर से नदी का पानी नीचे बहता है, एक शेर का शावक (बच्चा) पानी पीने आया। उसने कहा– अरे मेमने, तू मेरा पानी झूठा कर रहा है, मैं तुझे खा जाऊँगा। मेमने ने कहा– मैं निचले भाग में पानी पी रहा हूँ, जो वहाँ से आता है, जहाँ से आप पानी पीकर झूठा कर रहे हैं– श्रीमान! शेर को तो मेमने की मारकर खाना ही था, तो उसने नया बहाना बनाया और बोला– अच्छा, तू झूठा नहीं कर रहा हैं, तेरे पुरखों ने झूठा किया होगा, मैं तुझे खा जाऊँगा। सार यह है कि तब किसी निर्बल को सताने–मारने–खाने के लिए किसी शक्तिशाली को कोई आधार या बहाने की आवश्यकता रहती थी, किन्तु आज कंकरीट के जंगलों में पाये जाने वाले शेर या भेड़िया ऐसे हैं, उन्हें जहाँ कभी भी भेड़ दिखाई देती है, तो उनकी भूख बढ़ जाती है और वे उसे कहीं भी पकड़ कर खा जाते हैं। ये भेड़िया घर–बाजार, कार्यालय, विद्यालय, चिकित्सालय या आरक्षालय, कहीं भी मिल सकते हैं। नन्हीं बालिकायें, युवतियाँ या अन्य कोई भी अबलायें हों; उनके सम्बन्धियों के समक्ष ही दैत्यों के द्वारा हवस की शिकार बना ली जाती हैं। सम्बन्ध भी, आरक्षक, अध्यापक, चिकित्सक, वाहन चालक या अन्य किसी कुत्सित रूप से भेड़िये प्रकट हो जाते हैं। कारण यही है कि अब बच्चों के दीक्षा गुरु दूरदर्शन के जघन्य दृश्य हो गये हैं, जिन्होंने 'मातृवत परदारेषु' उपदेश को भुलाकर भोग–भोग–भोग की दृश्यावली बढ़ा दी है। शासन स्तर पर इनका नियन्त्रणकारी संगठन तो है किन्तु उसमें गठन कितना है वह इसी विकराल

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

सा विद्या या विमुक्तये

● अर्जुन देव स्नातक

शिक्षा = विद्या वही सार्थक है जो मुक्ति देने वाली = बन्धन से छुड़ाने वाली हो। बन्धन = 'बाधना लक्षणंदु:खम्' के अनुसार दुखोत्पादक साथन ही बंधन कहलाता है।। दु:खोत्पादक बन्धन दो प्रकार का है। प्रथम भव–बन्धन सांसारिक उलझनों में फंसकर दु:ख प्राप्त करना। द्वितीय बन्धन आवागमन= जन्म–मृत्यु के बन्धन में बंधना । दोनों ही बन्धन दु:खोत्पादक हैं। तोता सोने के पिंजरे में हो या लोहे के पिंजरे में दोनों ही बन्धन समान रूप से दु:खोत्पादक हैं। छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है–

''न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहति'।'

निश्चय से शरीर सहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता अप्रसन्नता की निवृत्ति नहीं होती है। उपनिषद् के इस वचन के अनुसार शरीर रहते हुए भव–बन्धन से छुटकारा नहीं होता है। क्योंकि शरीर के मिलने पर सांसारिक जन, सांसारिक वस्तुएँ सबको अपनी ओर आकर्षित करती हैं। ''भोगाय तनं शरीरम्'' के अनुसार यह शरीर भोगों का आयतन है, स्पष्ट शब्दों में यह शरीर भागों को भोगने का साधन है। अब प्रश्न यह है कि इस भव–बन्धन से एवं आवागमन से छुटकारा इस शरीर द्वारा कैसे संभव है? इस प्रश्न का समाधान योग दर्शन के निम्न सूत्र से हो सकता है:–

''प्रकाश क्रिया स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम्'' (योग दर्शन साधन पाद 18)

यह प्रकाश, क्रिया और स्थितिशील, पञ्चभूत और इन्द्रियों से युक्त यह दृश्यमय जगत् भोग एवं अपवर्ग = मोक्ष अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटने के लिए मिला है। तात्पर्य यह है कि भोगों को भोगने के लिए तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए शरीर साधन के रूप में प्राप्त है। भोगों की समाप्ति पर ही मोक्ष प्राप्ति संभव है।

अब प्रश्न है क्या भोगों को भोगते हुए दु:ख न हो तथा इस शरीर में, संसार में रहते हुए मोक्ष प्राप्ति संभव है? इस प्रश्न का समाधान हमें वेदमंत्र प्रदान करता है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्तिन कर्म लिप्यते नरे।।
यजु. 80/2

कर्म करते हुए = संसार में भोगों को भोगते हुए जीवन यापन करो क्योंकि शरीर मिला है। अतः कर्म करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। लेकिन इस संसार में रहते हुए कार्य इस प्रकार करो, जिससे ये कर्म बन्धन के कारण न बनें अर्थात् आवागमन के चक्र से छुड़ाने वाले, मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले हों। क्या ऐसा संभव है?

हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने इस विषय में चिन्तन करके कहा–

विद्यया विन्दतेऽमृतम् (केन. 2–2–4)

विद्या से अर्थात् यथार्थ ज्ञान से अमृत की, मोक्ष की प्राप्ति होती है। निरुक्तकार कहते हैं–

'विद्यातः पुरुष विशेषो भवति' (नि. 1–5–14)

विद्या से मनुष्य श्रेष्ठ और मान्य बनता है। महाभारतकार का वचन है:–

'नास्ति विद्यासमं चक्षुः' (महा. शा. पर्व 175–35)

संसार में विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। नीतिकारों के अनुसार–

'विद्या विहीनः पशुभिः समानः'।

विद्या से हीन मनुष्य पशु के समान होता है। गीता का वचन है:–

'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'।

ज्ञान के समान संसार में कुछ भी पवित्र नहीं है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं। –

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'।

बिना ज्ञान के मुक्ति=सांसारिक बंधन से छुटकारा तथा आवागमन=जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्ति नहीं हो सकती है। ऐसे शास्त्रों में अन्य अनेक वचन प्राप्त होते हैं। ये समस्त वचन स्पष्ट बोध देते हैं कि विद्या=ज्ञान से ही जीवन में जीने का आनन्द तथा परमानन्द=मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

यह सर्वविदित तत्व है कि ज्ञान दो प्रकार का होता है– 'एक स्वाभाविक दूसरा नैमित्तिक ज्ञान' स्वाभाविक ज्ञान तो सर्वसुलभ सहै किन्तु नैमित्तिक ज्ञान की प्राप्ति प्रयत्न सुलभ है। नैमित्तिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए–एक प्राचीन शिक्षा प्रणाली है, द्वितीय वर्तमान शिक्षा प्रणाली है। इस कथन में अतिशियोक्ति नहीं है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने तो मानवों को स्वार्थवृत्ति एवं भोग वृत्ति की ओर अतिशयता के साथ उन्मुख कर दिया है। इन तीनों वृत्तियों ने मनुष्य को मननशील न बनाकर पूर्णतः दानव बना दिया है– अल्पवयस्क बच्चिसयों के साथ बलात्कार, पिता–पुत्री, भाई–बहन तथा पारस्परिक सम्माननीय रिश्तों में पाया चरण, छल–कपट, वैमनस्यता की पराकाष्ठा, वृद्धजन तथा अन्य मान्य जनों की उपेक्षा, साधन सम्पन्न होने पर भी उन्हें असहाय छोड़ना, भ्रष्टाचार की चरम सीमा, न्यायालयों, चिकित्सालयों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, शिक्षणालयों तथा शासक वर्गों आदि में व्याप्त अमानवता, पारस्परिक स्नेह संबंधों में शिथिलता, आदि का नग्न नृत्य संसार में सर्वत्र दिखाई दे रहा है। यह सब वर्तमान शिक्षा प्रणाली की देन है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के प्रारंभ होने पर ही दूरदर्शी अकबर इलाहाबादी ने लिखा–ऐसी कुल किताबें काबिलेजब्ती समझते हैं जिन्हें पढ़कर कि बेटे बाप को खब्ती समझते हैं।

निश्चय से इस शिक्षा प्रणाली ने सामान्य रूप से संसार में शांति के साथ रहने योग्य मानव का ही निर्माण नहीं किया है तो बन्धन से छूटना–मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने का भाव, आकाश कुसुमवत् असंभव है।

प्राचीन ऋषि–मुनि स्वाध्यायशील थे। उनके समस्त क्रिया–कलाप वेदानुकूल थे। अतः विज्ञान–मनोविज्ञान समन्वित उनका चिन्तन था। स्वाध्याय से उन्होंने जान लिया था–

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः पष्ठानि में हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव संसृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।
(अथर्व, का.19 सू. 9 मं. 5)

परमपिता परमात्मा ने मेरे हृदय में ये पांच ज्ञानेन्द्रियां और छठा मन स्थापित किया है। इनके माध्यम से मैं नारकीय कार्य करता हूँ और इनके द्वारा शांतिदायक कार्य करता हूँ। मनु महाराज का वचन है:–

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।
(2–93)

निश्चय से इंद्रियों के कारण मनुष्य दोषों को प्राप्त होता है। अनका संयमित प्रयोग करने पर मनुष्य उन्नति को, सफलता को प्राप्त करता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।

मन ही मनुष्यों को बन्धन में डालने वाला या मोक्ष प्रदान करने का मुख्य साधन है।

यह चिन्तन करके पूर्वजों ने उस शिक्षा प्रणाली को आरंभ किया, जिसके द्वारा शैशवस्था से ही बालक के मन–मस्तिष्क को सदाशयता, उच्चावस्था, मानवीय सद्गुणों की भाव–भूमि पर अग्रसर किया जा सके। इस शिक्षा प्रणाली की संज्ञा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य था मानव को मानवीय गुणों से युक्त कर देना। वह नगर के गृहस्थ जीवन के वातावरण में संभव नहीं था। अतः कोलाहलमय नगर के वातावरण से दूर तपोवन में, प्रकृति के सान्निध्य में बालक को शिक्षित किया जाता था। सर्वप्रथम उनयन संस्कार के द्वारा उसे यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों के माध्यम से यह बोध दिया जाता था कि:–

'त्रिभिः ऋणैंः ऋणवान् जायते पुत्रः'

हे पुत्र! तू तीन ऋणों से बंधा हुआ है– माता–पिता, आचार्य, देव। इन ऋणों से मुक्त होने पर ही तू आवागमन के बन्धन से मुक्त होने का पात्र होगा। तू यहाँ शिक्षा–दीक्षा ग्रहण करने आया है। दीक्षा–दी–दीयते निर्मलं ज्ञानम्,क्षा–क्षीयते मोहावरणम्। अर्थात् निर्मल पवित्र ज्ञान, मानवीय गुणों को विकसित करने वाला ज्ञान, संसार में रहकर भी संसार में आसक्त न होने वाला ज्ञान, भोगों को भोगों से अलिप्त रहने का ज्ञान, पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा से रहित होने का ज्ञान तुझे दिया जायेगा। यहा स्मरण रखना है कि मोह, ममता, आसक्ति के त्याग से ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होगा।

गीता में नरक के, पतन के, मोक्ष के मार्ग को अप्रशस्त, अवरुद्ध करने वाले तीन द्वारा–मार्ग कहे हैं **त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तमादेत त्रयं त्यजेत् ।। 16–21**

काम, क्रोध और लोभ ये तीन आत्मा को नष्ट करने वाले नरक के द्वार हैं इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए। इन तीनों का त्याग ही जीवन को आनंद प्रदान करने वाला होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में आचार्य बालक से कहता है 'तू पण्डित बनने के लिए यहाँ आया है, अतः पण्डित कौन होता है, इसे समझ:–

मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

हे बालक! तुम पराई स्त्री को माता के समान समझकर काम को वश में रखना, दूसरों के धन को मिट्टी का ढेला समझकर लोभ को वश में रखना, सम्पूर्ण प्राणियों के साथ आत्मवत् व्यवहार करके क्रोध को वश में रखना, इस प्रकार तू पण्डित बन सकेगा, आत्मा को पतन के मार्ग से बचा सकेगा। मोक्ष के पथ को प्रशस्त कर सकेगा।

जो प्राचीन शिक्षा प्रणाली समापयोगी नागरिकों का, उत्तम, उदात्त भावों वाले, उच्च आचरण वाले नागरिकों का निर्माण करती थी। तभी यहाँ के शासक यह घोषणा कर सके थे–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

मेरे राज्य में चोर, कृपण या भीरु, शराबी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ करता है। कोई भी मूर्ख नहीं है, व्यभिचारी नहीं है तो व्यभिचारिणियाँ कहाँ होंगीं?

क्या आज कोई देश, कोई नगर, नगर का कोई छोटे से छोटा भाग या कोई परिवार ऐसी घोषणा कर सकता है? यह सब प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली द्वारा ही संभव हो सका था। मनु ने स्वाभिमान के साथ यह घोषणा की थी:–

एतदेश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या, सर्वमानवाः।
मनु 20–20)

इस देश के उत्पन्न हुए श्रेष्ठ पुरूषों से पृथिवी के सभी मनुष्य अपने अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करते है। आज भी प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली के यथोचित पाठ्यक्रमों के समन्वय के साथ प्रारंभ कर दी जाये तो पचास वर्ष के अन्दर योग्यतम नागरिकों का निर्माण हो सकता है। आवश्यकता है। दृढ़ संकल्प के साथ में क्रांतिकारी परिवर्तन की। वेद के इस वचन की सार्थकता भी संभव हो सकेगी:–

विद्यां च अविद्यांच यस्त द्वेरोमयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

''जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थत् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

5 सीताराम भवन, फाटक
आगरा कैंट 282001
मो. 08909347329

Concept of Health & Disease In Ayurveda

● Dr. Debashis Panda

Irrespective of the philosophy of the western medicine, each disease is different in different individuals and requires a different mode of approach in each individual. For example, in western medicine "fever" is common to each patient and "Paracetamol" acts as an universal antipyretic drug in each case. In contrast, "fever" is considered differently in each patient in Ayurveda and needs different medication for treatment in each case. In general, western medicine treats the disease whereas Ayurveda treats the patient.

Ayurveda doesn't consider body, mind and soul as separate entities but as a continuum. It has been observed that mental and emotional states have significant influence on physical health and vice versa. So, optimum health is considered as a state of physical, mental and spiritual well being, not merely the physical health alone. This definition of health is quite similar to the one, advocated by World Health Organization (WHO) now-a-days. More descriptively, the definition of health, as cited by ancient Indian sages, encompasses the following aspects:

- All the three humors must be in equilibrium.
- The digestive fire (Agni) must be normal leading to proper digestion, absorption and assimilation. (Physical health)
- The seven structural components (tissues-dhatus) must be in normal state and in integration with each other. (Physical health)
- Proper elimination of the waste products. (Physical health)
- The person must feel contentment and exhileration. (Spiritual health)
- The sense organs (both sensory and motor) must function normally and coordinate properly. (Social health)
- There must be happiness in mind. The mental attributes must be confined to provide peace and calmness in mind. (Mental health)

Among the above, 2nd , 3rd and 4th criteria are responsible for the physical health, while 5th, 6th and 7th criteria determine the spiritual, social and mental health respectively. The three humors act at each level and control the above functions. The coordinated equilibrium of three humors is a sign of positive health. Disturbance in any of the criteria listed above causes imbalance in the equilibrium of three humors, which later leads to the pathogenesis of a disease.

Even, Traditional Chinese system of Medicine (TCM) has similar concepts regarding health and manifestation of a disease. The concept of positive health in Chinese Medicine is defined as the state of dynamic equilibrium of yinyang, internal organs, vital body fluids (qi, blood, jing, jin-ye), mind and emotions and their inter-relationship with the environment or Universe (macrocosm). Manifestation of a disease starts, when the internal or external equilibrium (homeostasis) is disturbed. The person continues to be in good health as long as there is balance or equilibrium in the above attributes. Balance is the good health, imbalance is the diseased condition. The physician has to redress the balance by different approaches (herbal supplements, changing lifestyle, dietary regimen, acupuncture and moxibustion, qi gong and tai chi etc.) to achieve the cure for the patient.

Ayurveda doesn't consider body, mind and soul as separate entities but as a continuum. It has been observed that mental and emotional states have significant influence on physical health and vice versa. So, optimum health is considered as a state of physical, mental and spiritual well being, not merely the physical health alone. This definition of health is quite similar to the one, advocated by World Health Organization (WHO) now-a-days. More descriptively, the definition of health, as cited by ancient Indian sages, encompasses the following aspects:

Ayurvedic view of diseases : Diseases in Ayurveda are classified into seven broad categories and each category is further subdivided into two subgroups based upon the etiological factors. Depiction of different types of diseases is as follows :

Genetic : In Ayurvedic view, genetic disorders arise due to defects or impurities in sperm or ovum of parents. The impurities or defects, found in sperm or ovum of parents may cause genetic diseases like diabetes, asthma, hemorrhoids, tuberculosis, obstinate skin diseases etc. These are of two types; one arising from impurities found in the sperm of father (Pitrija) and another arising from impurities found in the ovum of mother (Matrija). Impurities in sperm or ovum are found generally due to misconduct, defective dietary regimen, addiction, mental imbalance and stressful living. These disorders can be prevented by making the sperm and ovum of parents pure before conception.

Congenital : These diseases are caused due to nutritional deficiencies in pregnancy and unfulfilled desires of the expected mother during pregnancy. Janmabalapravritta diseases include kyphosis, dwarfism, blindness, albinism, leucoderma, gigantism and other congenital anomalies. Even now-a-days it is considered that congenital anomalies occur because of bad conducts practiced by the pregnant mother and/or food or drugs taken by the pregnant mother.

Constitutional: The constitutional diseases arise due to the dietary and behavioural incompatibilities practised by the individual. These cause imbalance in the coordinated equilibrium of three humors, which leads to the diseased state. The constitutional diseases are of two types: somatic physical and psychic mental. Furthermore, the diseases could be vatic, paittik, or sleshmic in somatic category and rajasika or tamasika in psychic category.

Traumatic : Traumatic diseases occur due to the trauma caused by external or internal means. These disorders are of two types i.e. external or internal depending upon the means of trauma caused. External trauma is caused due to grief, fear, anger, jealousness or over stressed and strained life. In both cases, imbalance in the equilibrium of three humors is essential to carry on the diseased state. In internal trauma, imbalance in the equilibrium is caused first and then manifestation of the disease starts. In contrast, imbalance of the three humors is secondary to the external injuries i.e. diseases in case of external trauma.

Seasonal : These are the diseases caused due to the season change and abnormal climatic conditions. These are also of two types; one group of diseases occur at the niceties of season change and another group of diseases occur due to abnormal climatic conditions i.e. cold in summer or hot in winter. Ayurveda has advised special attention to be taken in the transitional period (Ritusandhi) that occurs between two seasons. Ritusandhi (transitional period) is a period of 14 days comprising of the last week of the outgoing season and first week of the incoming season. The season change is never an abrupt one but a gradual process. Diseases like fever, influenza, headache, malaise, and cough occur in this period and the existing diseases get aggravated. Therefore, special care should be taken to avoid these ailments. During this transitional period, the dietary and behavioral regimen for the outgoing season should be gradually tapered off and the regimen for the incoming season should be gradually introduced.

Infectious diseases and Natural calamities : Daivajanya diseases are also of two types. One group of diseases is caused by infection of invading pathogens, bacteria, virus, fungus and parasites. Though, these pathogens (bacteria, virus etc.) were not known to the ancient sages of Ayurveda, they considered these diseases were due to some supernatural causes. They thought these diseases to arise from sin and bad things done by the person in present life or previous lives. Another group of diseases are caused by natural calamities like earthquake, tsunami, flood etc. and also includes epidemic diseases.

Natural diseases : There are some diseases, which are inevitable and are sure to occur in every people, even healthy. Ayurveda names them as natural diseases and these are hunger, thirst, sleep, senility and death.

जीवात्मा और परमात्मा

● डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक'

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

(यजुर्वेद : अध्याय–40.1)

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ गतिमान् है, उस सबमें ईश्वर उपस्थित है। कौन–कौन से पदार्थ गतिमान् हैं? समस्त चेतन गतिमान् हैं। मनुष्य चल–बोल रहा है तो गतिमान् है। वह बैठा है तो भी गतिमान् है क्योंकि उसकी बुद्धि सोचने की, मन संकल्प–विकल्प की और नेत्र देखने आदि की क्रिया में हैं। वह सोया है तो भी गतिमान् है क्योंकि श्वास चल रहा है, शरीर में रक्त दौड़ रहा है और भोजन पच रहा है। इसी प्रकार पशु–पक्षी आदि अन्य प्राणी भी गतिमान् हैं।

समस्त जड़ पदार्थ भी गतिमान् हैं। पृथ्वी घूम रही है। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि पिण्ड भी घूम रहे हैं। नदी बह रही है। वायु चल रही है। अग्नि उठ रही है। रेलगाड़ी दौड़ रही है। ये सब गतिमान् हैं। जो दवा शीशी में है, पुस्तक मेज पर रखी है एवं पत्थर मार्ग में पड़ा है, ये भी गतिमान् हैं क्योंकि इन सबके परमाणुओं में इलेक्ट्रान गति कर रहे हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का प्रत्येक जड़–चेतन पदार्थ गतिमान् है।

इन सभी गतिमान् पदार्थों अर्थात् जड़–चेतन में ईश्वर उपस्थित है। प्रश्न उठता है कि जब सभी पदार्थों में ईश्वर उपस्थित है तो कोई पदार्थ चेतन और दूसरा जड़ क्यों हैं? वस्तुतः पदार्थों की चेतनता या जड़ता ईश्वर के कारण न होकर जीवात्मा के कारण है। ईश्वर सबमें एक–सा है। जिसमें जीवात्मा भी है, वह चेतन है, जैसे– मनुष्य, गाय, घोड़ा, सर्प, मच्छर, वनस्पति आदि। जिसमें जीवात्मा नहीं है, वह जड़ है, जैसे– पत्थर, लोहा, मिट्टी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अस्थि, मन आदि।

जीव ब्रह्म का अंश नहीं

कुछ लोग जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। यह जीवात्मा के स्वरूप को न समझने के कारण है। जीव अर्थात् जीवात्मा और ब्रह्म अर्थात् ईश्वर पृथक–पृथक हैं। **''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।'' (योग दर्शन पाद–1. 24)** ईश्वर अविद्या आदि क्लेशों, अच्छे–बुरे कर्मों, कर्म–फल–वासनाओं और बन्धन से परे है। जीवात्मा इनमें जकड़ा हुआ है। किन्तु अज्ञानी लोग कहते हैं कि जीव उसी प्रकार ब्रह्म का अंश है जिस प्रकार जल की बूँद समुद्र का अंश है। उनका यह कहना मिथ्या है। एक तो समुद्र, जल की बूँदों के संग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जबकि ईश्वर समस्त जीवों से पृथक् भी पूर्ण है। दूसरे, जल की बूँद में वे सब गुण होते हैं जो समुद्र में होते हैं। केवल मात्रा का भेद है। किन्तु जीव और ब्रह्म में केवल मात्रा नहीं, कोटि का भी भेद है। ब्रह्म सत्यस्वरूप है किन्तु जीव सत्य और असत्य, दोनों व्यवहार करता है। ब्रह्म न्याय ही न्याय करता है जबकि जीव न्याय और अन्याय, दोनों करता है। ब्रह्म भूख–प्यास से मुक्त है जबकि जीव भूख–प्यास से युक्त है। ब्रह्म कभी बन्धन में नहीं आता जबकि जीव बन्धन में आता रहता है। ब्रह्म सुखस्वरूप है जबकि जीव सुख एवं दुःख दोनों भोगता है। **''पत्यादिशब्देभ्यः।'' (वेदान्त दर्शन अध्याय–1.43)** ईश्वर के लिये 'पति' आदि शब्दों का बहुधा प्रयोग होता है। इससे विदित होता है कि जीव प्रजा और ईश्वर उनका राजा है। अतः ईश्वर और जीव पृथक्–पृथक् हैं।

यदि जीव ब्रह्म का अंश होता तो सभी जीव ब्रह्म के अंश होने के कारण परस्पर समान होते। किन्हीं दो जीवों में शत्रुता वा अन्तर न होता। किन्तु जीवों में कोई विद्वान् है तो कोई मूर्ख, कोई धनी है तो निर्धन,कोई–कोई सत्यवादी है तो कोई मिथ्यावादी, कोई मित्र है तो कोई शत्रु, कोई विनम्र है तो कोई अभिमानी, कोई न्यायाधीश है तो कोई अपराधी, एक को दूध प्रिय है तो दूसरे को मद्य, एक उद्योगी है तो दूसरा आलसी, एक आस्तिक है तो दूसरा नास्तिक, एक जीव और ब्रह्म को पृथक् मानता है तो दूसरा जीव को ब्रह्म का अंश मानता है।

''अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत्।'' (वेदान्त दर्शन : अध्याय–2.3.48) जीवात्मा के लिए अनेक शिक्षायें प्रचलित हैं कि यह करो, यह न करो। यदि जीव ब्रह्म का अंश होता तो ब्रह्म जीव को अर्थात् स्वयं को शिक्षा क्यों देता और संसार के कष्ट भोगने क्यों भेजता ? जीव ब्रह्म की अर्थात् अपनी उपासना क्यों करता? ब्रह्म जीव को अर्थात् स्वयं को कैसे मोक्ष देता? ब्रह्म जीव के अर्थात् स्वयं के लिये वेद का प्रकाश क्यों करता? ब्रह्म जीव को अर्थात् स्वयं को कैसे दण्ड देता? वस्तुतः जीव ब्रह्म का अंश नहीं है। अंश तो जड़ पदार्थो के होते हैं। अपितु प्रत्येक जड़ पदार्थों के भी अंश नहीं हो सकते। जैसे–मन का अंश छोटा मन नहीं हो सकता। बुद्धि के अनेक भाग नहीं हो सकते। अहंकार का विभाजन नहीं हो सकता। आकाश के टुकड़े नहीं हो सकते। चेतन के खण्ड होने तो नितान्त असम्भव हैं। जीव असंख्य हैं और प्रत्येक जीव एक पृथक् चेतन सत्ता है। एक जीव दूसरे जीव के भीतर प्रविष्ट नहीं हो सकता। परमात्मा एक पृथक् चेतन सत्ता है। किन्तु यह जीवों की तुलना में अधिक सूक्ष्म है। इससे यह प्रत्येक जीव के भीतर है और प्रत्येक जड़ पदार्थ के भीतर भी है। भिन्न स्वरूप होने से यह सबसे पृथक् भी है। जैसे आकाश वायु में भी है, अग्नि में भी है, जल में भी है, पृथ्वी में भी है और इन सबसे पृथक् भी है।

ब्रह्मण्ड असीम अनन्त है

यह ब्रह्माण्ड असीम और अनन्त है। इसमें सबसे अधिक गति प्रकाश की है जो एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड है और सबसे बड़ा समय चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है जो सृष्टि की अवधि है। यदि एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकण्ड की गति से चलने वाला कोई राकेट चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक निरन्तर चलता रहे तो भी ब्रह्मण्ड का पार नहीं पा सकता। इस असीम और अनन्त ब्रह्माण्ड के कण–कण में ईश्वर सर्वव्यापक है।

ईश्वर की उपस्थिति निष्क्रिय नहीं अपितु सक्रिय है। वह नियम बनाकर प्रत्येक पदार्थ को नियम से चला रहा है। मन–बुद्धि में बैठा चिन्तन को समझ रहा है। प्रत्येक प्राणी के प्रत्येक कर्म को देखकर उसका फल निश्चित कर रहा और यथासमय फल दे रहा है। वह सब कालों में, सब स्थानों पर, सब प्रणियों के लिये एकरस एवं पूर्ण है। उसे सत्यनिष्ठा–पूर्वक सर्वव्यापक जान एवं मानकर मनुष्य पापों से बच सकता है। अतः प्रत्येक मनुष्य ऐसा ही करे।

त्यागपूर्वक भोग

प्राणियों को खाना–पीना जागना–सोना, हँसना–रोना, सुख–दुःख, जीना–मरना आदि भोग करने पड़ते हैं। जब तक जीवन तब तक भोग हैं। भोगों में रमे रहना दुःख का कारण है। इसलिए वेद का उपदेश है कि त्यागपूर्वक भोग करो। जो लोग भोगों में रमे रहते हैं, वे भोजन में स्वाद ढूँढते हैं, शरीर को सजाते–सँवारते हैं, कर्म में निन्दा–स्तुति करते हैं, पाने में हर्ष और खोने में शोक करते हैं। जो त्यागपूर्वक भोगते हैं, वे बाँटकर खाते हैं, भोजन में स्वाद के बजाए अमृत खोजते हैं, शरीर को शुभ कर्मो का साधन मानते हैं, कर्म करके ईश्वर को अर्पित करते जाते हैं, पाने–खोने में एकरस तथा हर्ष–शोक में समरस रहते हैं।

महाभारत के वर्णनानुसार एक क्रौञ्च पक्षी मांस का टुकड़ा चोंच में लिये था। उसे देखकर दूसरे पक्षी आ गये और भोजन छीनने के लिए उसे मारने लगे। उसने मांस का टुकड़ा नीचे गिरा दिया तो पक्षी उसे छोड़कर मांस पर टूट पड़े। इस प्रकार मांस का त्याग करके वह पक्षी दुःख से छूट गया। इससे यह शिक्षा मिलती है कि त्याग में ही वास्तविक सुख एवं शान्ति है।

लोभ मत कर

मा गृधः। गिद्ध मत बन। लोभ मत कर। तृष्णा में मत फँस। गिद्ध को लोभ का प्रतीक इस कारण माना गया है क्योंकि वह अपने आहार के लोभ में प्राणियों के शवों की आशा लगाये रहता है। इसी प्रकार मनुष्य लोभ में फँसकर बड़े–से–बड़ा पाप कर बैठता है। लोभ में फँसा मनुष्य चोरी करता है, दवा में मिलावट करता है, किसी की हत्या कर देता है, देश–द्रोह के काम भी कर डालता है, अपने प्राण भी खो बैठता है। लोभी व्यक्ति के लिए धन ही सब कुछ है। धन के लिए वह न रिश्ता–नाता देखता है, न आयु देखता है और न धर्म–अधर्म ही देखता है। इससे स्पष्ट है कि लोभ का कर्म भी बुरा है और उसका फल भी भयंकर है। अतः लोभ से सदा दूर रहना चाहिए।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।
(योग दर्शन 1, 42. का व्यास भाष्य)

व्यास जी कहते हैं कि संसार में इच्छा की पूर्ति होने से सुख मिलता है। इससे भी बड़ा सुख स्वर्ग का सुख स्वर्ग का सुख कहलाता है। किन्तु ये दोनों सुख तृष्णा के नाश से होने वाले सुख का सोलहवाँ भाग भी नहीं हैं। अतः मनुष्य तृष्णा एवं लोभ को छोड़े और सन्तोष एवं शांतिपूर्वक रहे।

यह धन किसका है

मनुष्य स्वर्ण की प्राप्ति करता है। यह स्वर्ण मनुष्य के परिश्रम से निकलता है किन्तु निकलता तो पृथ्वी से ही है और पृथ्वी ईश्वर द्वारा रची गयी है। मनुष्य कृषि करके अन्न उपजाता है। इसके लिए वह खाद, पानी एवं अच्छे बीजों का प्रयोग करता है किन्तु पृथ्वी में अन्न उपजाने का गुण तो ईश्वर का ही दिया हुआ है। मनुष्य युद्ध करके भूखण्ड जीतना है किन्तु नये भूखण्ड नहीं बना सकता। मनुष्य विद्या प्राप्त करके विद्वान् बनता है किन्तु विद्या का आदि स्रोत तो ईश्वर ही है। मनुष्य संसार को त्याग कर मोक्ष प्राप्त करता है किन्तु मोक्ष का दाता तो ईश्वर ही है।

यह समस्त धन–ऐश्वर्य अर्थात् भूमि, जल, वायु, ओषधि, प्रकाश, अन्न, स्वर्ण, विद्या आदि द्रव्य ईश्वर के हैं। मनुष्य इनको पाता एवं खोता अवश्य है किन्तु वह इनका निर्माता एवं स्वामी नहीं है। फिर भी वह इन्हें अपना समझता और इनके कारण स्वयं पर अभिमान करता है। मृत्यु के समय वह इन सबको छोड़कर अकेला चला जाता है और उसके साथ कुछ नहीं जाता। फिर भी वह इन्हें अपना कहता और इनके कारण पाप भी कर बैठता है। यह विवेक नहीं अपितु अज्ञान है। यह समस्त धन–ऐश्वर्य ईश्वर का है। इसे पाकर इसमें फँसना नहीं चाहिए अपितु त्यागपूर्वक भोगते हुए इसका सदुपयोग और ईश्वर की उपासना करनी चाहिए।

6105, पतंजलि योगपीठ फेज–2
हरिद्वार–249405 (उत्तराखण्ड),
मो.–9839181690

Environmental Ethos InVedic Times

● **Kamla Nath Sharma**

Today, the natural resources of the earth are being mindlessly exploited globally far beyond need, resulting in a poor state of their regeneration and causing irreversible damage to the planet. This year's World Environment Day theme–'Seven billion dreams. One planet.Consume with care' -therefore, is highly relevant.

Starting from space, a Vedic mantra, 'prithivy apah tejah vayuh akashat' depicts sequential primal appearance of the five basic gross substances, called 'panch mahabhuta'-namely, space, air, fire or energy, water and earth– from which all universal matter is created.

Water has enjoyed the highest socialandreligiousstatusinancient Indic culture. Prayers in all four main Vedas refer to water as nectar , honey, source of life, protector of earth and environment, cleanser of sins, generator of prosperity, and ambrosia. Sages in Yajur Veda pray thus, "O Water, thou art the reservoir of welfare and prosperity, sustain us to become strong. We look up to thee to be blessed by thy kind ambrosia on this earth. O water, we approach thee to get rid of our sins." Rivers were considered divine and worshipped as goddesses and people were ordained to use their life-sustaining waters most judiciously and with greatest reverence.

Today, we have lost sight of the fact that the resources are finite. Of all of earth's water, only 0.007 % is accessible for human use.Today, globally more than 1.1 billion people have inadequate availability of water.

In Vedic cosmology, Prithvi or earth symbolises material base as mother and the Dyaus,upper sky or heaven, symbolises the unmanifested immortal source as father,which together and between them, provide paryavaran, the environment.

An Atharva Veda hymn says, "Mata bhoomih putroham prithivyaah," reminding us of our responsibility not only towards our motherland but also to s/o Planet Earth. The mantra refers to earth differently as 'bhoomi' and 'prithvi' implying that while my motherland is my mother, I am also a child of Planet Earth.

The Yajur Veda addresses Prithvi as a guardian, praised for being benevolent to humankind, and is prayed to for continued protection: "O Earth! Fill up your broad heart with the vital healing air, waters and flora. May the benevolent life-giving air circulate for a bountiful Earth."Another prayer says, "Pleasant be you to us, O Earth, without a thorn be our habitation. May your development grant us bliss and sustenance."

In-hymns of theRig Veda, seers seek blessings of the sun and wish every part of the earth to be prosperous and mountains, waters, and rivers to be propitious. The importance of vital healing air, fresh unpolluted waters and healthy flora on earth was recognised and wished for in the hymns of the Atharva Veda.

Nature and its seasons are governed by cosmic laws of integration and balance, called 'Rit' in the vedas. Keeping an eye on Rit, human activities can be directed to global sustainable development. A hymn of the Yajur Veda says, "O learned people, fully realise your conduct towards different objects of the universe." But, in today's world we are misusing scientific and technological breakthroughs to indiscreetly and greedily exploit natural resources, thereby causing imbalances that make it difficult to maintain natural harmony.

Ancient Indic philosophyalways wished for everyone to be happy and free from ailments, "Sarve bhavantu sukhinah,sarve santu niraamayaah"-Let everyone be well and happy-and pleaded for an all- inclusive holistic development on the planet for harmony, "Saa no bhoomirvardhayad vardhamaanaa" as in the 'Bhumi Sukta' of Atharva Veda.

(The writer is chairman, Aqua Wisdom and was formerly secretary, International Commission on Irrigation and Drainage (ICID), NewDelhi),

---

पुस्तक परिचय

श्रुति–मन्थन का संक्षिप्त परिचय

● मनमोहन कुमार आर्य

श्रुति–मन्थन लगभग 750 पृष्ठों का भव्य ग्रन्थ है जिसमें जीवन को सन्मार्ग पर प्रेरित करने व उसे सफल बनाने संबंधी पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। ग्रन्थ का लोकार्पण देश के विख्यात विद्वान एवं निवर्तमान शंकराचार्य **स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरी जी** तथा **प्रो. सुभाष विद्यालंकार जी** ने 2 नवम्बर, 2014 को हरिद्वार में आयोजित एक भव्य समारोह में किया। ग्रन्थ की भव्य साज–सज्जा व आकर्षक मुख पृष्ठ को देखकर मन प्रसन्न व आनन्दित हो जाता है। मुखपृष्ठ व अन्तिम कवर पृष्ठ पर **वेदमूर्ति आचार्य रामनाथ वेदालंकार जी** के भव्य चित्र हैं। अन्दर के पृष्ठ आचार्य जी पर श्रद्धांजलि एवं उनके संस्मरण ाों से सम्बन्धित लेख, कवितायें व चित्र आदि के रूप में हैं। अनेक अध्यायों में, प्रकाशकीय, पुरोवाक् व शुभाशंसा से आरम्भ होकर इस ग्रन्थ के प्रथम 45 पृष्ठों में ''**प्रणतिः**'' के अन्तर्गत आचार्य जी पर संस्कृत व हिन्दी की कवितायें हैं। इसके बाद आचार्य जी की जीवन यात्रा पर डा. विनोदचन्द्र विद्यालंकार जी द्वारा लिखित सामग्री है। इसके अगले अध्याय '**अतीत के झरोखे**' में आचार्य जी का सान्निध्य प्राप्त विद्वानों एवं सुधीजनों की तूलिका के अन्तर्गत 37 लेख व श्रद्धांजलियां हैं। '**स्मृति–सौरभ**' अध्याय आचार्य जी के परिजनों द्वारा प्रस्तुत 34 लेखों का संकलन है। '**स्मृतियों के वातायन से**' अध्याय के अन्तर्गत 29 लेख शिष्य परम्परा द्वारा समर्पित श्रद्धा–सुमन नाम से हैं। इसके बाद आचार्यजी का पत्राचार है जिसमें प्रथम वह पत्र है जो कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी का बालक रामनाथ को आशीर्वाद पत्र है। आगामी अध्याय '**पर्यालोचन**' में 23 विद्वान शिष्यों द्वारा आचार्य जी के कार्यों का मूल्यांकन व महत्ता सूचक लेख हैं। '**श्रुति–सौरभ**' अध्याय में आचार्यप्रवर के 14 लेखों का संकलन हैं। जिसका पहला लेख '**वेदों में सौर ऊर्जा का वैज्ञानिक प्रयोग**' एवं दूसरा '**वेदों का चमत्कारिक मनोबल है।**' अगले '**विचार–मंथन**' अध्याय में 9 लेखों का संकलन है। अन्तिम अध्याय '**काव्यामृतम्**' नाम से है जिसमें आचार्य जी कृत 8 काव्यों का पृष्ठ 715 से 723 तक संकलन है। एक परिशिष्ट '**वेदमूर्ति आचार्य रामनाथ वेदालंकार जन्मशती–वर्ष शुभारम्भ महोत्सव का आरम्भ**' नाम से आचार्य जी के पौत्र **श्री स्वस्ति अग्रवाल** द्वारा लिखित रिपोर्ट है। ग्रन्थ के अन्त में 44 पृष्ठ आचार्य जी से जुड़े पारिवारिक जनों एवं मुख्य–मुख्य अवसरों के रंगीन चित्र आदि दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तक में महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी श्रद्धानन्द जी के ग्रन्थ के आरम्भ में पूरे पृष्ठ के दो भव्य एवं आकर्षण चित्र हैं। पुस्तक का मूल्य 600 रुपये अंकित है जो '**श्री घूड़मल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डोन सिटी**' से प्रकाशित एवं प्राप्त है। **हमारा विचार है कि आचार्य जी से किसी भी रूप में जुड़े व्यक्ति के पास यह संग्रहणीय ग्रन्थ अवश्य होना चाहिए।**

यद्यपि ग्रन्थ का मूल्य रुपये 600.00 है परन्तु प्रकाशक द्वारा यह ग्रन्थ मात्र 300 रुपयों में उपलब्ध कराया जा रहा है। डाक व्यय की छूट भी दी जा रही है। पाठक को ग्रन्थ के प्रकाशक श्री घूड़मल पह्लादकुमार आर्य न्यास, ब्यानिया पाडा, हिण्डोन सिंटी–राजस्थान को मोबाइल संख्या 9414034072 पर फोन करना है या इसी पते पर डाक से पत्र भेजकर निवेदन कर सकते हैं। पुस्तक प्राप्ति का सुनहरा अवसर निकल न जाये, अतः इसे शीघ्र प्राप्त कर लें। बाद में यह अनुपलब्ध भी हो सकती है और पाठक को विस्मृति होने से वह इसके लाभ से वंचित भी हो सकता है। अतः शीघ्रता कर पुस्तक प्राप्त करने का प्रयास करें। यह हमारा हार्दिक परामर्श एवं निवेदन है।

पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोन : 09412985121

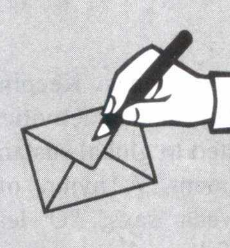

पत्र/कविता

दयानन्द-दर्शन की दो दृष्टियाँ

पं. गंगाप्रसाद 'उपाध्याय' ने महर्षि दयानन्द के दर्शन–शास्त्र पर अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी थी – 'फिलॉसफी ऑफ दयानन्द' जो सन् 1955 में छपी थी। उनसे पूर्व उनके पुत्र डॉ. सत्यप्रकाश ने (जो बाद में सन्यास लेकर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती हुए) इसी विषय पर अंग्रेजी में पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था – 'ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ द फिलॉसफी ऑफ दयानन्द।' वह सन् 1938 में प्रकाशित हुई थी। ये दोनों लेखक क्रमशः पिता और पुत्र थे।

दोनों विद्वान् आर्य समाज के उत्कृष्ट एवं सम्मानित लेखक हुए हैं। उन्होंने पृथक्–पृथक् लाखों शब्दों द्वारा विपुल साहित्य की रचना की। प्रस्तुत विषय पर पं. उपाध्याय जी ने महर्षि दयानन्द के तत्त्व–दर्शन की व्याख्या यूरोपीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में की जबकि डॉ. सत्यप्रकाश जी ने उक्त व्याख्या भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में की थी। इस प्रकार दोनों पुस्तकों को 'दयानन्द–दर्शन की दो दृष्टियाँ' कहा जा सकता है।

पं.उपाध्याय जी के उप–शीर्षक हैं–ऋषि दयानन्द का जीवन–वृत्त, शंकराचार्य का सिद्धान्त, देकार्त का मत, हेगल का दर्शन, काण्ट का दर्शन, आत्मा का अनात्मा से संयोग, जैन तर्कशास्त्र, बादरायण दर्शन, शून्य की सत्ता, रामानुजाचार्य का मत, परमाणु वाद और हेतुवाद, अरस्तु का आस्तिकवाद, पाश्चात्य त्रिमूर्ति, स्पिनोजा का आस्तिकवाद, डार्विन का विकासवाद, स्फुलिंग सिद्धान्त इत्यादि।

डॉ. सत्यप्रकाश जी के उप–शीर्षक थे – आप्त जीवन की पृष्ठभूमि, वेदमन्त्रों का अन्तःभाव, सत्य एवं परिवर्तनशील जगत्, मन की वैदिक अवधारणा, छः शास्त्रों में समान विचार, सांख्य का अनीश्वरवाद मिथ्या, संशयवाद का जनक बौद्धदर्शन, जीवों का अनेकत्व, निमित्त और उपादान एक नहीं, वैशेषिक परमाणुवाद, मृत्यु के पश्चात् जीवन, देवयान और पितृयान, आगामी जीवन के प्रमाण, जैन–बौद्ध दर्शनों में पुनर्जन्म, वैराग्य या संन्यास, अन्तरात्मा की आवाज, अन्यों का हित इत्यादि।

विद्वज्जन दोनों अंग्रेजी–पुस्तकों की परस्पर तुलना करते हैंः किन्तु दोनों लेखकों की महानता के कारण किसी एक को दूसरी से श्रेष्ठतर बताने से बचते हैं। पं. उपाध्याय जी डॉ. सत्यप्रकाश जी की पुस्तक के विषय में स्वयं लिखते हैं कि ''यह एक सराहनीय पुस्तक है किन्तु प्रचार की कमी के कारण उतनी प्रसिद्ध न हो सकी।'' दोनों पुस्तकों के पाठक अनुभव करते हैं कि पं. गंगाप्रसाद 'उपाध्याय' का विषय–प्रतिपादन बेहतर है और डॉ. सत्यप्रकाश द्वारा प्रस्तुत विषय–सामग्री बेहतर है।

दोनों पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद लखनऊ के अन्तरराष्ट्रीय ख्याति–प्राप्त वैदिक विद्वान डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक' द्वारा किया गया है। स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती की पुस्तक का नाम उन्होंने 'स्वामी दयानन्द का वैदिक दर्शन' रखा था जो वर्ष 2010 में प्रकाशित हुई। वर्ष 2014 में प्रकाशित पं. गंगाप्रसाद 'उपाध्याय' की पुस्तक का नाम रखा है – 'ऋषि दयानन्द का तत्त्व–दर्शन।'

इन दोनों अनुवादों का प्रकाशन 'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, 4408 नई सड़क, दिल्ली–110006' ने किया है मूल्य है क्रमशः 225 एवं 300 रुपये। अनुवाद और छपाई उत्तम हैं। लेखक एवं प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

आनन्द कुमार गुप्ता
मकान–17, गली–3, सैनिक नगर
(निकट तेलीबाग नहर क्रासिंग),
रायबरेली रोड, लखनऊ–226029,
मोबाइल–9452680202

****

सोया संसार जगाया ऋषि दयानन्द तपधारी ने

सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
वेदों का नाद बजाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

गीत गडरियों के वेदों को, ईसाई बतलाते थे।
जाहिल हैं भारत वासी, कहते थे हंसी उड़ाते थे।।
दुष्टों का दम्भ घटाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

नारी को पैरों की जूती, यहां बताया जाता था।
नारी तो है खान नर्क की, शोर मचाया जाता था।।
नारी को पूज्य बताया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

पशुबलि, नरबलि यज्ञों में, देते थे पापी लोग यहां।
जन्म जाति का छुआ–छूत का , पनप गया था रोग यहां।।
शुभ कर्म करो समझाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

नर–नारी थे दुखी यहां था, अंग्रेज़ों का राज सुनो।
दाने–दाने को भारत की, जनता थी मोहताज सुनो।।
अंग्रेज़ी राज्य हिलाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

देश वासियो! देव दयानन्द, अगर जगत् में ना आते।
राम कृष्ण के वशंज जग में, ढूंढे से भी ना पाते।।
परहित में कष्ट उठाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

जगत् गुरु ऋषि दयानन्द के, वीर सैनिको! जागो तुम।
करो परस्पर मेल, फूट पापिन को वीरो! त्यागो तुम।।
दुष्टों को सदा हराया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

करो वेद प्रचार जगत् में, वैदिक धर्म निभाओ तुम।
''नन्दलाल निर्भय'' भारत की, जग में शान बढ़ाओ तुम।
सत्यार्थ प्रकाश दिखाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।
सोया संसार जगाया, ऋषि दयानन्द तपधारी ने।।

पं. नन्दलाल निर्भय भजनोपदेशक ''पत्रकार''
आर्य सदन, बहीन जनपद, पलवल (हरियाणा)
चल भाष– 09813845774

अन्धकार से प्रकाश की यात्रा में भक्ति सहज और सरल है

वैज्ञानिक प्रकृति के केन्द्रों को अनावरण कर जो पाता है उसे समाज 'अनुसंधान' कहता है और योगी जिन केन्द्रों पर विजय पाता है उसे 'सिद्धि' कह कर शास्त्रों ने पुकारा है।

शिक्षा मनुष्य के मस्तिष्क को जागृत करने का कार्य करती है और यदि वह स्वचेतना को जगाने में सहायक नहीं होती तो जो ज्ञान व्यक्ति ने अर्जित किया है वही उसे बाँधता भी है।

अध्ययन के द्वारा मस्तिष्क में कुछ केन्द्र जागृत अवश्य होते हैं पर उनमें आलोक उदीप्त करने के लिए उसे आत्मसात कर अनुभव में उतार कर परखने पर वही शिक्षा अज्ञानता के बन्धन से मुक्त होने में सहायक हो जाती है। अन्यथा पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान कालांतर में हमें मनुष्य द्वारा अर्जित ज्ञान लगने लगता है और यह भ्रम हमें बांधता है।

शास्त्रों का अध्ययन, उनका मनन, उनका अनुसरण, जप, तप और भजन अपने अन्दर की सुषुप्त चेतना को जागृत करने के साधन हैं। ये साधन अंधकार से प्रकाश की यात्रा हैं। इस यात्रा के अनेक माध्यम हैं। इनमें भक्ति सहज और सरल है। भक्ति उस प्रेम का पर्याय है जो परमतत्व को अभीष्ट तल पर अनुभूत करने की शक्ति होती है।

दूसरा मार्ग है योग। योग शारीरिक व्यायाम नहीं है बल्कि शरीर के अंदर के केन्द्रों को बाह्य आसनों से नियंत्रित कर अंतः चेतना को ऊर्ध्वगामी बनाने का सप्रयास उपक्रम है। वैसे मनुष्य अपने अन्दर अगणित केन्द्रों की संभावना का अनुभव करता है। अर्थात अपार सम्पदा का कोष मनुष्य के अन्रद छुपा है। जिस से वह अनभिज्ञ है।

मोहन लाल मगो

****

☞ पृष्ठ 05 का शेष

प्रपीड़क ...

विघटन से पता चलता है।

3. चन्दन–क्रन्दन, रक्त–रक्त

आन्ध्र प्रदेश में चन्दन तस्कर बड़ी संख्या में तीर कमान, कुल्हाड़ी लेकर चन्दन के वृक्षों को काट रहे थे। इनमें से बीस तस्कर पुलिस के द्वारा मार दिए गये थे। मारे गये लोगों में अधिकतर पड़ोसी राज्य तमिलनाडु के निवासी थे। तस्कर हैं तो पुलिस पर भी आक्रमण कर सकते हैं। दूसरे राज्य के होने के कारण यह घटना विवाद का कारण बन गयी और उस राज्य ने मृतकों के परिवारों के लिए राहत राशि की घोषणा भी कर दी होगी। चन्दन की प्रजाति रक्त चन्दन के नाम से जानी जाती है, जो दुर्लभ होती है और अन्तरराष्ट्रीय बाजार में इसका मूल्य दो करोड़ रुपये प्रतिटन हो सकता है। केवल चन्दन ही क्या– अब ऐसी कोई वस्तु नहीं बची है– यहाँ तक कि बालू, मिट्टी, कंकड़–पत्थर जो खुदायी कर भवन निर्माण में प्रयोग होती है, उसकी भी तस्करी होती है। भक्त कवि की वह पंक्ति– "चंदन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग" को एक ओर ढकेलकर, भुजंग (तस्कर) चन्दन में विष व्यापत करने की बात तो दूर, उनके वृक्षों को ही काट–पीट कर नष्ट कर देते हैं और उनसे अपनी भोग वासना के लिए जेबें गरम कर लेते हैं।

सघन चन्दन धन ही नहीं सम्पूर्ण भारत का नन्दन वन अब अत्र–तत्र–सर्वत्र रक्त–रंजन से क्रदन करता दिखाई देता है। पुरानी दिल्ली में एक मोटर साइकिल सवार कार से टकरा गया। कार सवारों ने उसे इकट्ठी हुई भीड़ के मध्य और उसके बच्चों के सामने ही इतना पीटा कि उसने दम तोड़ दिया। पुकार लगाने पर उसे कोई बचाने के लिए आगे नहीं बढ़ा। समाज की यह विषाक्त स्थिति कुछ वर्षो से बनी है, क्यों कि आरक्षक तन्त्र इनका संररक्षण नहीं कर पाता है और वे स्वयं आक्रमक लोगों के निशाने पर आ जाते हैं। एक तान्त्रिक द्वारा नये स्थापित स्पेलर की सफलता के लिए एक बाहर वर्षीय बालक को टुकड़े–टुकड़े करके पीस दिया। वे लोग पकड़ तो लिये गये, किन्तु दण्डित होंगे या नहीं यह भविष्य के गर्भ में ही रह गया। नित्य प्रति होने वाली इस पीड़ाजनक घटनाओं से राष्ट्र में क्रन्दन बढ़ता जा रहा है, अब तो शासनतंत्र में मंत्री पद प्रतिष्ठित व्यक्ति भी ट्रेन, बस, कार आदि में इन क्रूरकर्माओ के हाथों चढ़ते देखे जा रहे हैं। जब राष्ट्र रक्तरंजित होगा तो चन्दन भी क्रन्दन मण्डित हो जायेगा। यथार्थ बाल–संस्कारों का प्रसार ही इसका परिष्कार कर सकता है। जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं है। उनका पूरा ध्यान इसी में है कि वे अपने बच्चों को परिवार से दूर करते चले जाते हैं। बाल–गृह, प्लेग्रुप, एल.के.जी., यू.के.जी. से टेन प्लस टू विश्वविद्यालय, व्यावसायिक प्रतियोगिता, प्रशिक्षण फिर सेवा में नियुक्ति के बाद बाल से युवा बनी सन्तति नैतिक संस्कार से दूर अति दूर होकर वित्त व्यापार से जुड़कर परिवार को तार–तार करती चली जा रही है। भारत के विशाल तन्त्र में खो गये नीति मंत्र को खोजकर वापस लाने की आवश्यकता है।

4. रजक वाक्य और रामराज्य

अपनी गर्भवती पत्नी देवी सीता को श्रीराम ने वन में छुड़वा दिया, इसका कारण राज्य प्रजा से सेवक किसी रजक का तथाकथित कटुवाक्य "मैं राजा राम नहीं हूँ जो महीनों रावण के यहाँ रहने के बाद भी अपनी पत्नी की स्वीकार कर लेते हैं।" इस वाक्य का अस्तित्व विवादस्पद है। इस वाक्य में श्रीराम पर व्यक्तिगत कटाक्ष तो हो सकता है, किन्तु उनके रामराज्य के प्रति आक्षेप नहीं है। भारत में पुरातन काल से ही लोकप्रिय शासन रहा है। राजा प्रजा को पुत्रवत मानकर चलता था। यदा–कदा अपवाद होने पर भयंकर प्रतिवाद भी हो जाता था। "जितने मुँह उतनी बातें" के अनुसार "क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा" के अनुसार शासन नहीं चलता था।

भारत के वर्तमान गणतन्त्र के संसद के विरोधी पक्ष ही नहीं विरोधी नेता का होना आवश्यक माना जाता है। विवाहोपरान्त परिवार में नववधू का आगमन हुआ। हल्के–फुल्के मनोरंजन की दृष्टि से सम्बन्धी व परिवारीजन वहाँ एकत्र हुए। हँसी–हँसी में संसद व मन्त्रिमण्डल के पदों पर नियुक्ति प्रक्रिया चालू हो गई। परिवार के मुखिया राष्ट्रपति, उनकी पत्नी उपराष्ट्रपति, बड़े पुत्र प्रधानमंत्री, उनकी पत्नी गृहमंत्री यहाँ तक कि सभी छोटे बड़ों पदों का बंटवारा हो गया। तभी नववधू से उनके पद के विषय में भी पूछ लिया गया। वह चुप रही है। कई बार ननदों के उकसाने पर आखिर उसे बोलना ही पड़ा। संसद एवं मन्त्रिमण्डल के पदों का निर्धारण आप लोगों ने कर ही लिया है। आप लोगों ने स्वयं ही बचा बचाया पद मेरे लिए छोड़ दिया है। वह है नेता विरोधीदल। नववधू से कोई नाराज इसलिए नहीं हुआ, क्योंकि इसके लिए उनके कान में एक नन्हीं नन्द रानी ने ही फुसफुसाया था।

आइए, भारत राष्ट्र की स्थिति का अवलोकन करें। श्री नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री बने एक वर्ष नहीं हुआ है। उनका एक पैर देश में दूसरा पैर विदेश में रहता है। प्रत्येक प्रवासी भारतवंशी में स्वाभिमान की लहर जग आई है। सर्वत्र भारत का गौरवगान हो रहा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत का बड़ा सुधारक बताया है, उन्होंने 'टाइम' पत्रिका में प्रशंसा करते हुए कहा है "भारत की तरह मोदी भी प्राचीन और आधुनिकता को ऊँचाइयों पर ले जाते हैं। वह योग पद्धति के प्रबल समर्थक हैं। ट्विटर के जरिये भारतीयों से जुड़ते हैं और डिजिटल भारत की कल्पना करते हैं।'' (दैनिक हिन्दुस्तान 17.04.2015) इधर भारत के समाचार पत्रों के शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है। मोदी से मुकाबले को बना मोर्चा, जिसमें छहः द्व लन सातवें विविध विरोधी मिलकर सत्ता लोलुपता हेतु चक्रव्यूह की रचना में लग गये हैं। सत्ता पक्ष–विपक्ष का क्या यही प्रयोजन है कि उसे विरोधी पक्ष के रूप में शासन के हर हितकारी निर्णय का विरोध ही विरोध करना है।

5. कनक–ती–वती तथा क्रिया–ती–वती

अंग्रेजी स्वयं ही अपने शब्दों को बिना नियम के तोड़ मरोड़ कर बोलती रहती है। वह But को बट और Put को पुट कहती है। हमने भी उपरोक्तानुसार यहाँ पर शब्दों का रूपान्तरण कर लिया है। एक शब्द है कनेक्टिविटी (Connectivity) उसको कनक–ती–वती और दूसरा शब्द है– क्रियेटिविटी (Creativity) उसको क्रिया–ती–वती लिख दिया है। यह दोनों शब्द मेन्टलिटी (Mentality) से नियंत्रित होते हैं। कठोपनिषद के ऋषि ने बुद्धि को सारथी और मन को लगाम कहा है। रथ को चलाने के लिए सारथी के हाथ में लगाम होती है, उसी से वह घोड़ों को नियन्त्रित करता है। लागाम में दोनों रस्सियाँ बराबर होती हैं तो घोड़े सीधे गन्तव्य की ओर चलते हैं, और इन दोनों में थोड़ा भी अन्तर होता है तो घोड़ों का मार्ग भी मुड़ जाता है और वह भटक भी सकते हैं।

आजकल किसी भी कार्य स्थल पर जाइए, वहाँ पर आपका काम कम्प्यूटर से होता है, शीघ्र भी होता है। यह सम्पूर्ण कार्य इसी कनेक्टीविटी पर निर्भर रहता है। लम्बी पंक्ति में खड़े–खड़े खिड़की पर पहुँचे, पता चला कि कनेक्टीविटी चली गयी, अब आप कुछ भी करें, खड़ें–खड़ें पैर टूट जायें पर कनेक्टीविटी का मिलना यदि नहीं हुआ तो काम नहीं होगा। कनेक्टीविटी हो तभी क्रिया–ती–वती संभव होगी। कनक–ती–वती का कनक महत्वपूर्ण है, कहा गया है कि–

कनक कनक तै सौगुनी मादकता अधिकाय।
या खाये बौराय जग वा पाये बौराय।

यहाँ पर 'कनक' शब्द दो वस्तुओं की ओर संकेत करता है– धतूरा और स्वर्ण। धतूरे के खाने पर आदमी मदहोश होता है, किन्तु स्वर्ण के पाने पर भी वह मदहोश हो जाता है। यहाँ तीसरे 'कनक' अर्थात् गेहूँ अन्न को याद कर लेना चाहिये। 'जैसा खाये अन्न वैसा बने मन' के अनुसार अपने मन को सात्विक अन्न के सेवन से शुद्ध बनाये रखने पर बुद्धिरूपी सारथी और मन रूपी लगाम सही संचालन करते रहेंगे। अपनी क्रिया–ती–वती (क्रियेटीविटी) कार्यशीलता को बनाये रखने के लिए कनक–ती–वती (कनेक्टीविटी) की उपलब्धि आवश्यक है। यह अवरोध भुगतान प्राप्त करने में ही नहीं, भुगतान जमा करने में भी आकर विज्ञान पर अज्ञान की छाप छोड़ता रहता है। संचालकों द्वारा इसके प्रति सावधानी रखने पर ही कार्यावरोध दूर होकर (वृद्ध–युवा) ग्राहकों को राहत मिल सकती है, अन्यथा नित्यप्रति ग्राहकों का आक्रोश विस्फोटक स्थिति पर पहुँचकर कभी भी अर्थ को अनर्थ में बदल सकता है।

'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम), रामघाट मार्ग, अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)

दानी विद्वान और भजनोपदेशक होंगे पुरस्कृत

राव हरिशचन्द्र आर्य, मैनेजिंग ट्रस्टी, राव हरिश चन्द्र आर्य चैरीटेबल ट्रस्ट के पत्र द्वारा जानकारी मिली है कि उन्होंने जीवन–दानियों, विद्वानों एवं भजनोपदेशकों से आर्य रतन पुरस्कार हेतु ऐसे महानुभाव जिनका जीवन परोपकार, त्याग, समाज सेवा, योग, शिक्षा, गौसंवर्धन एवं आर्ष प्राच्यविद्या के प्रचार प्रसार में नैष्टिक जीवन वेद प्रचार, प्रसार, लेखन, वैदिक साहित्य लेखन व समाज सेवा में लगा हो एवं आर्य गौरत परस्कार, हेतु ऐसे महानुभाव जिन्होंने पुरा जीवन भजनों के माध्यम से पूरा जीवन वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में लगाया हो, के नाम आमन्त्रित किये हैं। आवेदन पत्र 30 सितम्बर 2015 तक पुरस्कार चयन समिति, राव हरिश चन्द्र आर्य चैरिटेबल ट्रस्ट, 387 आर्योदय, रूईकर मार्ग, महल, नागपुर, महाराष्ट्र –440032 के पते पर पहुंचने अनिवार्य हैं।

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 08-09/7/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

डी.ए.वी. देहरा में वैदिक चेतना एवं चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन हुआ

डी.ए.वी. देहरा के प्रागांण में विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री. जी.के. भटनागर जी की अध्यक्षता में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं आर्य युवा समाज हिमालय के तत्वावधान में 27.6.15 से 29.6.15 तक त्रिदिवसीय वैदिक चेतना एवं चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। इस आयोजन के उदघाटन पर देहरा नगर के उपमण्डलाधिकरी श्री मलूक सिंह ठाकुर को आमंत्रित किया गया।

शिविर का शुभारंभ हवन–यज्ञ द्वारा किया गया। इसमें विद्यालय के 77 विद्यार्थियों ने भाग लिया। प्रतिदिन यज्ञ से पूर्व प्रभातफेरी एवं योगाभ्यास करवाया गया। तत्पश्चात् भजनोपदेशक श्री सुरेश कुमार द्वारा वैदिक एवं आर्यसमाजी भजनों के द्वारा विद्यार्थियों में नैतिक चेतना का विकास किया गया। इस आयोजन के अन्तर्गत विद्यार्थियों द्वारा प्रशनोत्तरी प्रतियोगिता, भजन गायन, नाटक मंचन जैसी गतिविधियाँ करवाई गईं

कार्यक्रम के समापन समारोह में मुख्यातिथी सेवानिवृत प्रिंसिपल श्री वी. एस. पठानिया एवं सेवानिवृत डिप्टी डायरैक्टर श्री हरीश गुलेरी जी ने अपने प्रवचनों से विद्यार्थी जीवन में धारण किये आचरण का आजीवन अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया।

अन्त में प्रधानाचार्य श्री जी.के. भटनागर जी ने सभी आगन्तुकों, छात्रों एवं विद्यालय परिवार का धन्यवाद किया। क्षेत्रीय निदेशिका श्रीमती पी. सोफत एवं मुख्यातिथि श्री बी.एस. पठानिया द्वारा विजेता प्रतिभागियों को पारितोषिक वितरित किए गए व विद्यार्थियों ने शांति पाठ के मन्त्र के उच्चारण से शिविर का समापन किया गया।

डी.ए.वी संस्था के स्थापना दिवस पर रक्तदान शिविर का आयोजन

डी.ए.वी. सैंट. पब्लिक (सीनियर सैकंडरी) डी.ए.वी. स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में **''रक्त दान शिविर''** का आयोजन किया गया।

इस शिविर में विद्यालय की स्थानीय मैनेजिंग कमेटी के वाइस चेयरमैन श्री टी.सी. बत्ता जी, सदस्य गण, नगर के लॉयन क्लब, रॉट्री क्लब, रॉट्री क्लब ग्रेटर, आर्य समाज के सदस्य गणों, नगर के गणमान्य व्यक्तियों, पत्रकारों व वरिष्ठ छात्रों और छात्रों के अभिभावकों को आमंत्रित किया गया।

हवन प्रक्रिया से विद्यालय में पांच दिन का वैदिक चंतना शिविर आयोजित किया गया। इस हवन का संचालन विद्यालय में कार्यरत शास्त्री श्री रोहित आर्य ने किया। प्रधानाचार्या जी व शिक्षकों ने यज्ञ में मंत्रों

के उच्चारण के साथ आहुतियाँ प्रदान कीं।।

डी.ए.वी. के स्थापना दिवस के इस पावन अवसर पर **रक्तदान शिविर** का शुभारंभ मुख्यातिथि एवम् विद्याालय की स्थानीय मैनेजिंग कमेटी के वाइस चेयरमैन श्री टी.सी. बत्ता जी के नेतृत्व में करवाया गया। इस शिविर का संचालन चंडीगढ़ पी जी.आई. से आई ब्लड बैंक की टीम द्वारा किया गया। रक्त दान का आरंभ विद्यालय की प्रधानाचार्या जी व शिक्षकों ने रक्तदान करके किया विद्यालय के बच्चों के अभिभावकों, नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने सहर्ष रक्त दान करते हुए रक्त दान शिविर में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

इस शिविर में लगभग 120 यूनिट रक्त एकत्र किया गया। शिविर में रक्त दान करने वालों को दूध, फल इत्यादि खाद्य सामग्री प्रदान की गई और प्रमाण पत्र भी दिये गये।

प्रधानाचार्या जी ने, अतिथिगणों व रक्त दाताओं, विद्यालय के शिक्षकों एवम् अभिभावकों का शिविर को सफल बनाने हेतु हार्दिक धन्यवाद किया।

संस्कृत संगीत संध्या एवं सांस्कृतिक समारोह सोल्लास सम्पन्न

अध्यात्म पथ (पं.) मासिक पत्रिका एवं दिल्ली संस्कृत अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में आर्यसमाज बी–2 जनकपुरी में विश्वशांति महायज्ञ, संस्कृत संगीत भजन संध्या एवं सांस्कृतिक समारोह का भव्य आयोजन किया गया। यज्ञोपरान्त स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी ने अपने आशीर्वचन में कहा कि यज्ञ करने वाले का घर अत्यन्त मनोहर, धनधान्य से परिपूर्ण, हितकारी एवं रमणीय होता है। स्वामी जी ने प्रख्यात वैदिक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी के मानव कल्याण के कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि आचार्य चन्द्रशेखर जी ओजस्वी वक्ता, उत्कृष्ट लेखक, वेदविद्या पारंगत, प्रतिष्ठित वैदिक विद्वान हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री अरूण सहारन ने की तथा इसके विशिष्ट अतिथि सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, पद्मश्री डॉ. रमाकान्त शुक्ल एवं दिल्ली संस्कृत अकादमी के सचिव डॉ. धर्मेन्द्र कुमार थे। समारोह का आयोजन सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री के सानिध्य में हुआ।

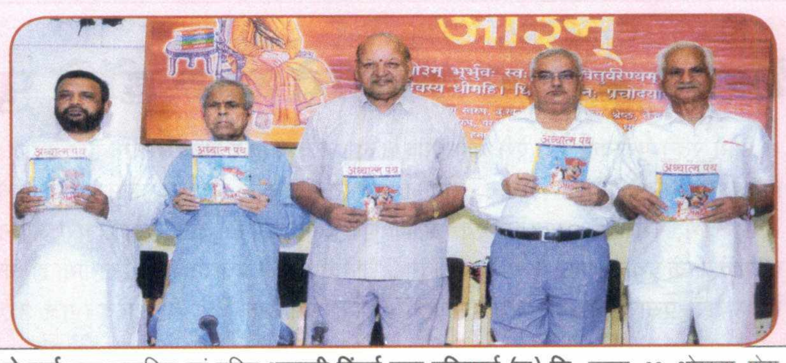

इस अवसर पर अध्यात्म पथ पत्रिका एवं ज्ञान गंगा का लोकार्पण खचाखच भरे सभागार में विद्वत् जनों की उपस्थित में हुआ।

भजन सम्राट श्री फणीश पवार एवं उनके सहयोगियों ने संस्कृत में संगीत मय प्रस्तुति से समाँ बाँध दिया। युवाकवि श्री विनय शुक्ल विनम्र की कविताओं ने सबका मन मोह लिया।

विशाल समारोह में साध्वी उत्तमा यति, एवं अनेक पत्रकारों, विद्वानों तथा विभिन्न संस्थाओं के अधिकारियों की उपस्थित गरिमापूर्ण रही।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**